धार एवं माण्डू की

सूफी संत परम्परा

राम सेवक गर्ग

धार एवं माण्डू की

सूफी संत परम्परा

राम सेवक गर्ग

सम्पादक
कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक - आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल, बाण गंगा, भोपाल-462003
मध्यप्रदेश, भारत
फोन - 0755-2551878, 2760668

प्रकाशन वर्ष - वर्ष 2005 प्रथम संस्करण

शब्दांकन - आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

आवरण - माण्डू स्थित पुरातात्विक भवन से

मुद्रण - नियो प्रिंटर्स, भोपाल

मूल्य - 200/- रूपये दो सौ केवल

Dhar Evam Mandu ki Sufi Sant Parampara
RAM SEWAK GARG

सूफी साधना और सूफी रचना ने आध्यात्मिक साधनाओं की भारतीय परम्परा और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। मध्यकाल में जब भारतीय भक्ति आंदोलन के अन्तर्गत विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की साधना पद्धतियों, दर्शन और रचना का विकास हो रहा था, तभी सूफी मत और साधना ने भी भारतीय लोकजीवन को प्रभावित किया। सूफी साधकों की रचनाओं का भी समाज पर गहरा असर हुआ क्योंकि इनमें लोक स्मृति में बसी कथाओं, गाथाओं और वाचिक परम्परा के तत्त्वों का समावेश किया गया था। अमीर खुसरो जैसे महान रचनाकार और संगीतज्ञ ने बोलियों के शब्दों और मुहावरों का उपयोग कर, अभिव्यक्ति का व्यापक लोक विस्तार किया। जायसी का प्रबंध काव्य 'पद्‌मावत' अवधी में रचा गया और इस रचना को साहित्य के इतिहास में एक महान् रचना का स्थान मिला। भारतीय संगीत के क्षेत्र में भी सूफियों का अवदान अप्रतिम है।

सूफी साधकों का उदार दृष्टिकोण, सहज और सदा जीवन, अन्य धर्मों-सम्प्रदायों और उपासना पद्धतियों का सम्मान, लोक परम्पराओं और लोकतत्त्वों के समावेश से अभिव्यक्ति का सहज विकास और लोकजीवन में उनकी गहरी पैठ होने से, सूफी साधक और साधना लोगों में सहज स्वीकार हुए।

इस समय भक्ति आंदोलन एक विराट आध्यात्मिक उन्मेष और लोकधर्मी विस्तार की ओर अग्रसर था। इसमें कई धाराएँ और सम्प्रदाय थे। अनेक दर्शन और विचार प्रणालियाँ तथा उपासना और अनुष्ठान के ढंग थे। भक्ति के मूल में, ईश्वर को प्रेम रूप मानकर, समस्त सृष्टि के साथ प्रेमपूर्ण होना और सहज समर्पण की भावना थी इसमें जाति-वर्ण, क्षेत्र, भाषा, नस्ल और सम्प्रदायों के अन्तर, देव और ग्रंथों की भिन्नता जैसी चीजें कोई अर्थ नहीं रखती थी, इस पृष्ठभूमि में सूफी साधना, जो कि अपने मूल में ही प्रेम साधना का एक रूप है, लोगों में सहज स्वीकार हुई। सांसारिक और लौकिक प्रेम को समस्त सृष्टि, प्राणीमात्र और ईश्वर के अलौकिक प्रेम में

परिवर्तित करने यह साधना और विचार भारतीयों के लिए बहुत चिरपरिचित और निकट की चीज लगे। लोगों में उसका स्वीकार और समादर हुआ।

जम्मू-कश्मीर, पंजाब और सिंध के अलावा राजस्थान और दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों के साथ ही मध्यदेश के मालवा क्षेत्र में सूफी मत के अनेक केन्द्र थे। मालवा में विशेष रूप से मांडू, धार और बुरहानपुर बड़े सूफी केन्द्र बन गये। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के अनेक शिष्यों ने मांडू और धार में सूफी साधना और विचार का विस्तार किया।

चूँकि इस पूरी परम्परा का आध्यात्मिक, सामाजिक और रचनात्मक क्षेत्रों में, हमारी लोक परम्परा और लोकजीवन पर गहरा प्रभाव रहा है और लोकस्मृति से उसका गहरा सरोकार है- इसलिए यह आवश्यक है कि हम मध्यप्रदेश में मालवा क्षेत्र की सूफी साधना और सूफी साधकों के इतिहास, उसकी परम्परा और अवदान का सम्यक् अध्ययन करें।

हमारे आग्रह पर प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व के विद्वान विशेषज्ञ श्री रामसेवक गर्ग ने सूफी परम्परा के अन्वेषण के क्रम में 'धार और माण्डू की सूफी संत परम्परा' ग्रंथ लेखन किया है। दुर्भाग्य से वे अब हमारे बीच नहीं है। आदिवासी लोककला अकादमी उनकी स्मृति को प्रणाम करती है।

इस कार्य में हमें इन्दौर के अपने सहयोगी मित्र और सूफी परम्परा के जिज्ञासु श्री चिन्मय मिश्र तथा मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी के संयुक्त सचिव श्री इकबाल मसूद का भी अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति भी हम अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

हमें आशा है इस ग्रंथ से हमारे पाठकों में लोकधर्मी सांस्कृतिक परम्परा में, सूफी मत और उसके अवदान को समझने में सहायता मिलेगी।

-कपिल तिवारी

अनुक्रम-

पीराने धार
धार नगर–स्थापना और सूफी पृष्ठभूमि

इस्लाम के जन्म से लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों बाद मालवा में ऐतिहासिक नगर धार की स्थापना हुई। अपने गौरवयुक्त सांस्कृतिक आर्थिक व राजनीतिक वैभव के कारण यह नगर आकर्षण का विषय रहा है। इस नगर की भौगोलिक स्थिति के कारण यहाँ उत्तरापथ और दक्षिणापथ एक साथ मिल जाते थे। इतिहासकार अलबेरूनी धार कभी नहीं आया, लेकिन यहाँ के वैभव और इस नगर को जोड़ने वाले मार्गों का बहुत ही अच्छा विवरण उसने लिखा है।[1] निश्चित–रूपेण यह जानकारी उसे यात्रियों, व्यापारियों एवं सूफी साधु संतों से मिली होगी। लगभग 300 वर्षों तक यह नगर शक्तिशाली परमार राजाओं की राजधानी रहा। उस समय इसे सम्पूर्ण उत्तरभारत के वैभव का प्रतीक माना जाता था। साहित्यिक स्रोतों में इस नगर का परिचय परमारों की 'कुल राजधानी धारा नगरी' के रूप में मिलता है। 'धारा' शब्द वैदिक साहित्य में 'वाक्' 'वाणी' अथवा सरस्वती यानी विद्या व ज्ञान की अधिष्ठात्री शक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मालवा के विकसित अनेक शिक्षा केन्द्रों यानी गुरूकुलों के मुख्यालय के रूप में ही इस नगरी की स्थापना की गई थी, और 'कुल राजधानी' विशेषण प्रदान किया गया था। सम्भव है परमार राजा मुन्ज को भी तभी से 'वाक्पतिराजदेव' कहा जाने लगा हो। पुरावशेष भी इसी तथ्य के साक्षी हैं कि 'सरस्वती–सदन' अपर नाम भोजशाला यहाँ का एक सर्वश्रेष्ठ विद्यालय था और 'वाक्देवी' नगर की अधिष्ठात्री देवी भी थी।

अपनी स्थापना के बाद यह नगर साहित्य संरचना, तत्त्वज्ञान और धार्मिक विचारधाराओं तथा मतमतान्तरों की गहन समीक्षा का केन्द्र रहा। यद्यपि स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलते कि इस नगर का इस्लामी रहस्यवाद से कब सम्पर्क आया, परन्तु यहाँ के विचारकों ने इस्लाम की मान्यताओं पर चर्चाएँ न की हों यह सम्भव प्रतीत नहीं होता। कुछ इतिहासकारों का मत है कि जब

अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति अैनुलमुल्क मुलतानी ने 5 जमादी उल अव्वल 705 हिजरी, यानी 23 नवम्बर 1305 ईस्वी के दिन धार नगर को जीतकर दिल्ली सल्तनत का 'इक्ता' बना दिया, तब प्रथम बार इसका इस्लाम से सम्पर्क हुआ। अैनुलमुल्क मुलतानी की मालवा विजय का विस्तृत और प्रामाणिक विवरण सूफी संत अमीर खुसरो ने अपने ग्रंथ खजाइनुल फुतूह में लिखा है। अमीर खुसरो ही नहीं मालवा का इतिहास लिखने वाले अन्य मध्यकालीन इतिहासकारों में से किसी ने भी यहाँ के सूफी संतों एवं विचारकों पर कोई महत्त्वपूर्ण जानकारी नहीं लिखी।[2] मुहम्मद कासिम हिन्दूबेग अस्तवादी फ़रिश्ता ने 'गुलशने इब्राहीमी' के दूसरे भाग-(12 वें अध्याय) में तथा मुंशी करीम अली के 'तवारीख़-इ-मालवा' के पृष्ठ-205-6 में धार के कुछ सूफी संतों की सूचना मात्र दी है।

इतिहास साक्षी है कि मध्यकाल में धार की पहचान 'पीराने धार' के रूप में स्थापित हुई। निश्चित ही इस पहचान के कर्ता विजयी सेनानायक या सुल्तान न होकर इस नगर को अपनी तपोभूमि व कर्मभूमि बनाने वाले सूफी संत थे, जो विभिन्न खानवादों, सिलसिलों और समुदायों से सम्बन्धित थे। पुरावशेषों से भी यही तथ्य स्पष्ट होता है कि असहाब सैय्यदुल मुरसलीन अब्दुल्ला शाह चंगल से भी पहले चालीस पीर (चहलतन) धार आ चुके थे। अब्दुल्लाशाह चंगल की दरगाह के समीप उनकी कब्रें बनी हुई हैं। शाह चंगल सहाबी हैं या ताबई हैं इस सम्बन्ध में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों ने धार में उनकी आगमन तिथि 441 हिजरी (1049 ईस्वी) एवं विसाल तिथि रवी उल अव्वल 655 हिजरी (1267 ईस्वी) बतलाई है। इनके मकबरे के परिसर में बाहरी द्वार के सिरदल पर 13 वीं शती ईस्वी का एक फ़ारसी शिलालेख लगा हुआ है। पूरे भारत में यह अपने युग की फारसी का सबसे घड़ा शिलालेख है। उसके अनुसार शाह चंगल राजा भोज के समय धार आए थे। धार में तीन शासक ऐसे हुए हैं जिन्हें भोज संज्ञा प्राप्त थी। शाह चंगल किस भोज के समकालीन थे यह तथ्य आज भी विवादास्पद है। अभिलेख के अनुसार इनके प्रभाव से राजा भोज ने इस्लाम के सिद्धान्तों का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। सम्भव है यह घटना परमार जयसिंह के पुत्र अर्जुन वर्मन द्वितीय जो भोज तृतीय कहलाता था, के राज्यकाल की (1268 से 1300 ईस्वी) हो। शाह चंगल से सम्बन्धित अनेक कथानक और अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं। इनका मकबरा आज भी 'ज़्यारतगाह ख़ल्क़ अल्लाह' के सम्मान से जाना जाता है।

खानवादों का संक्षिप्त परिचय

'मशाहीर-मशाइख़-हिन्द' की प्रस्तावना में लिखा गया है कि जिस प्रकार अधिकारियों की श्रेणियाँ व पद होते हैं उसी प्रकार सूफी संतों के भी पद यानी मर्तबा सुनिश्चित हैं। वली औलिया चार प्रकार के-(सोहरा, कुबरा, वस्ता और अज़्मा) होते हैं। इनकी कुल संख्या यानी अख़्ताल-3000, अब्दाल-40, सैय्याह-7, औताद-5, कुतुबुल औताद-3 एवं कुतुबुल अक़्ताब-1 अर्थात् 3,056 से कम नहीं होती। कुछ विद्वान औतादों की संख्या 5 के बजाय 4 ही मानते हैं। 'तवारीख़-इ-मालवा' के लेखक मुंशी करीम अली ने मालवा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का

वर्णन करते हुए सूफी संतों व फकीरों के पीरों, समुदायों (गिरोहों) एवं ख़ानवादो से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण जानकारी संकलित कर प्रस्तुत की है। यह जानकारी 'पीराने धार' के इतिहास की कड़ियों को जोड़ती है।[3]

सूफी फकीर चार पीरों, सात समुदायों और चौदह ख़ानवादों से अपना अलग-अलग सम्बन्ध रखते हैं। अरबी संतों के अनुसार हसन बसरी, कामिल बिन ज्याद, अब्दुल्ला मक्की एवं अब्दुल्ला बसरी ही प्रमुख पीर हैं। फारस वालों के मतानुसार प्रथम दो नाम तो समान हैं। किन्तु वे चार की संख्या पूरी करने के लिए क़ाज़ी सरह क़ाज़ी कूफा और हज़रत उवेस क़रनी का नाम जोड़ना पसंद करते हैं। शेष दुनिया के लोग भी अलग-अलग नामों को महत्त्व देते हैं। एक मत के अनुसार मुहम्मद मुस्तफा सल्ललाहो अलैहे वसल्लम, पीराने पीर हज़रत अली मुर्तजा अलैहिस्सलाम, हज़रत इमाम हसन अलैहिस्सलाम फर्जिन्द बसीर व नज़ीर व हसन बसरी तथा खलीफा जनाब अमीर मेंहदी अलैहिस्सलाम प्रथम चार पीर हैं। दूसरे मत के लोग हज़रत इमाम हसन व हज़रत इमाम हुसैन तथा हसन बसरी व कमील बिन ज्याद को चार पीरों में गिनते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कम से कम तीन मत ऐसे हैं जिनमें मौ. हसन बसरी और कामिल बिन ज्याद को विशेष महत्त्व प्राप्त है।

हज़रत अली ने जिन सात लोगों को फक़्त का उपदेश दिया था, कालान्तर में उन्हीं सूफी संतों (फक़ीरों) के सात गिरोह (समुदाय) उद्‌भूत हुए। हसन बसरी से 'बसरिया' हज़रत उवेस क़रनी से 'उबेसिया', अब्दुल्ला इल्म परवर के ख़लीफ़ा हज़रत मुजतबा कलंदर लहरपुरी से 'कलंदरिया' हज़रत कमील बिन ज्याद से 'कामिला' क़ाज़ी सरह बिन हानी से 'सबरिहा' हज़रत सलमान फ़ारसी से 'सलमानिया' और हज़रत मुहम्मद बिन अबू बकर से 'मुहम्मदिया' फ़कीरों के समुदाय प्रचलित हुए। ऐसी मान्यता है कि प्रथम तीन समुदाय ही भारत में प्रसिद्ध हुए। लेकिन धार में व्यापारियों, यात्रियों और सैनिकों के साथ अन्य समुदायों के अनुयायी भी आते रहे। इस नगर में 'पीराने-पीर' का मर्तबा बलख़ बुख़ारा के संत मौ. फ़ख़रूद्दीन क़ुतुब-उल-अक़ताब को प्राप्त है और पाड़लिया रोड पर कुष्ठ चिकित्सालय के पीछे तालाब के समीप उनका चिल्ला प्राचीन काल से बना हुआ है। यमन, बलख़, बसरा और समरकंद आदि स्थानों से आए हुए सूफी संतों की दरगाहें भी धार में विद्यमान हैं।

संत हसन बसरी के दो खलीफा थे-(1) शेख़ हबीब अज़मी और (2) अब्दुल वाहिद बिन ज़ैद। इन्हीं शेख़ हबीब अज़मी से नौ और अब्दुल वाहिद बिन जैद से कुल पाँच अर्थात् चौदह ख़ानवादों (संत कुलों) सिलसिलों की उत्पत्ति हुई है। सूफी फ़कीरों और अनुयायियों के अनेकानेक उप समुदाय और सिलसिले मुख्य रूप से इन्हीं ख़ानवादों की उप शाखाएँ हैं। धार नगर में शताब्दियों से ऐसे-ऐसे सूफी संतों और अनुयायी फ़कीरों का आना जाना चल रहा है,जिन्हें सामान्य जन पहचान नहीं पाते। संतों की पहचान ढूँढने और पीराने धार के महत्त्व को समझने की दृष्टि से भी खानवादों का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

शेख़ हबीब अज़मी से उद्‌भूत ख़ानवादे

जीबयान

अब्दुल रहमान बिन औफ़ाफ़ के दो पुत्र जो अबू मुहम्मद हबीब बिन ईसा अज़मी के मुरीद थे स्वयं को 'जीबयान' कहते थे। उनके अनुयायी भी जीबयानी कहलाए। ये लोग एकान्तवास करते हैं, मजलिसों में नहीं जाते, किसी का दिया हुआ कुछ नहीं लेते और दिन-रात में केवल एक बार कोई सा भी जंगली फल खाकर परमशक्ति अल्लाह के ध्यान में व्यस्त रहते हैं।

तैफ़ूरियान

संत तैफ़ूर बायजीद बस्तामी बिन ईसा बिन आदम बिन सरोसान बिन मुईद बस्तामी प्रारम्भ में हजरत इमाम ज़ाफ़र सादिक़ अलैहिस्सलाम के भिश्ती थे। कुछ संतों का मत है कि स्वयं इमाम ज़ाफ़र सादिक़ ने अपना ख़रक़ा इन्हें प्रदान किया था। कुछ विद्वानों का मत है कि वे हबीब अज़ीम के मुरीद थे और उन्हीं से ख़रक़ए ख़िलाफ़त प्राप्त हुई थी। इन तैफ़ूर साहब के पाँच ख़लीफ़ा थे जिन्हें अलग-अलग ख़रक़े प्रदान किये गये थे। शेख़ मसूद के ख़रक़ा शकरपारा, शेख़ महमूद को ख़रक़ा हजारमेखी, शेख इब्राहिम को ख़रक़ा ख़श्त मुरब्ना, शेख़ अहमद को ख़रक़ा जन्दा और शाह नसीरुद्दीन को ख़रक़ा खश्तपारा का प्राप्त हुआ था। शाह नसरुद्दीन से सूफी संतों का एक नया सिलसिला प्रारम्भ हुआ जो 'सुलतानिया' कहलाता है।

शेख़ अहमद के ख़लीफ़ा सुलतानुल आरिफ़ीन बायजीद बस्तामी से दो सिलसिलों- 'अश्क़िया' एवं 'शत्तारिया' का प्रारम्भ माना जाता है, किन्तु मूलत: वे अलग-अलग न होकर एक ही हैं। 'अश्क़िया' फ़कीर अपना शजरा इस प्रकार मानते हैं- बायजीद बस्तामी से खरका शेख़ बहाउद्दीन मोहम्मद अहमद मजनी को मिला और मजनी से क्रमश: शेख़ अराबी ज़ैद अश्क़ी को व उनसे शेख़ अबू मुजफ्फर तूसी, व उनसे शेख़ अबुल हसन अश्क़ी मुरसिदिया को मिला। इन्हीं अबुल हसन अश्क़ी के मुरीद 'अश्क़िया' कहलाए। शत्तारियों की परम्परा भी इन्हीं से जुड़ी हुई है। शेख़ अबुल हसन के मुरीद खुदाकुली मावराउन्नहरी थे और उनके मुरीद शेख़ मुहम्मद आशिक़ थे, जिन्होंने अपना खरका शेख़ मुहम्मद आरिफ़ फरयावी को दिया। यही खरका फ़रयावी से धार और माण्डू के सुप्रसिद्ध संत शाह अब्दुल्ला शत्तारी को मिला। उनके मुरीदों ने अपने को 'शत्तारी' कहना प्रारम्भ किया। अब्दुल्लाशाह शत्तारी सिद्दीक़ी की मज़ार माण्डू में जामा मस्जिद से पूर्व स्थित अशर्फ़ी महल में है। इन्हें शत्तार बाबा के नाम से जाना जाता है। मुंशी करीम अली ने लिखा है कि यद्यपि उपर्युक्त परम्परा में मतभेद है, किन्तु अधिकांश लोग इसी को ही स्वीकार करते हैं।

मालवा में शत्तार बाबा ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर विशेष ध्यान दिया। वे स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। धार और माण्डू उनकी कर्मभूमि रही हैं। उन्होंने अपने अनुयायियों को जो तरीकत बताई व सिद्धान्त सुझाए वह मालवा में सूफी संतों की मान्यताओं का सार है। उनका कहना था-'होश दरदम, नज़र दरकदम, सफ़र दरवतन, खिलवत दर अंजुमन' इनके अनुयायी

ज़िक्र अस्तिला (रहस्य चर्चा) को महत्त्व देते हैं और 'कलमए तैय्यबा को खयाल की क़लम से दिल पर लिखते हैं।' चिल्ला करना उचित मानते हैं। मुरीदों को लहू व लइब (खेल तमाशा) की तौबा करवाई जाती है, नफ़्सकशी (इन्द्रिय निग्रह) सिखलायी जाती है और कहा जाता है कि यादे खुदा के तसब्बुर में रहकर उसे एक पल के लिए भी नहीं भूलना चाहिए।

इसी तैफूरिया ख़ानवादे से सिलसिला नक्शबंदिया भी उद्भूत हुआ है। इस सिलसिले के सुप्रसिद्ध सूफ़ी संत बहाउद्दीन ज़करिया थे जिन्हें खिरकए सैय्यदा मीरकलां से मिला था। यह खिरका मूलत: बायजीद बस्तामी का था जो कम से कम बारह अन्य ख़लीफ़ों के पास से होता हुआ मीरकलां तक आया था। इस खरकए सैय्यदा का मूल उद्देश्य सहनशीलता पूर्वक ईश्वर के नाम को रोशन करना (बुर्दवारी व सत्तारी) था।

नक्शबंदियों का एक उपसमूह मुजद्दिदिया है इसके अनुयायी फ़कीर माथे पर काला तिलक लगाते हैं जिसे 'अलिफ श्याही' कहते हैं। उन्हें फ़कीर अलिफ अल्लाह भी कहा जाता है। नक्सबंदिया, फकीर क्रमश: गुदड़ी हज़ार मैरवी, गुदड़ी शकरपारा, गुदड़ी खश्त मुरब्बा तथा गुदड़ी पशम हैवाजनात पहनते हैं, तथा इसी से सुलतानिया, अश्क़िया, सत्तारिया, नक्शबंदिया व मजदिया के रूप में पहचाने जाते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि इस नक्शबंद सिलसिले के मूल प्रवर्तक ख़्वाजा बहाउद्दीन तुर्किस्तान के निवासी थे और 1388 ईस्वी तक जीवित रहे। उनके शिष्यों ने 17 वीं सदी में भारत आकर सिलसिले का प्रचार-प्रसार किया। मुगल सम्राट औरंगजेब इसी सम्प्रदाय के ख़्वाजा मुहम्मद माशूक का मुरीद था। इस सिलसिले का प्रभाव शिक्षित लोगों पर अधिक रहा। ये लोग मानते हैं कि विभिन्न इच्छाओं का दमन करते हुए हृदय को पवित्र रखकर ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। ये संत कट्टरता के विरोधी और प्राणीमात्र की एकता के हिमायती थे।

कर्खियान

यह ख़ानवादा मारुफ़ कर्खी से निकला है। हबीब अज़मी के चार ख़लीफ़ा थे-बायजीद बस्तामी, दाऊद ताई, हकीकतुल आरीफ़न और शाह फ़तेहउल्ला कर्खी-जिन्हें दाऊदताई से खरफा प्राप्त हुआ था। दाऊदताई को वही खरका हबीब अज़मी ने दिया था। हबीब अज़मी को हसन बसरी से और हसन बसरी को हज़रत अली ने अता किया था। एक दूसरे मत के अनुसार शाह कर्खी इमाम मूसा अली के दरबान थे और ईमाम रज़ा ने कर्खी सा. को खिरका दिया था। मारुफ संत कर्खी के दो ख़लीफ़ा हुए-शाह महमूद और सरी शख्ती। सरी शख्ती के भी दो ख़लीफ़ा थे-शाह अब्दुल्ला और जुनैद बगदादी। इस कर्खियान ख़ानवादे से आगे चलकर दो नए ख़ानवादे निकले जो क्रमश: शख्तियान और जुनीदियान कहलाए।

शख्तियान

मारुफ़ कर्खी के ख़लीफ़ा व मुरीद सरी शख्ती के तीन मुरीद थे, जो स्वयं को शख्तियानी

कहते थे। इनके फ़कीर कमल व सौंफ का खरका रखते हैं तथा बारहों महीने रोज़ा रखते हैं। तीसरे चौथे दिन एक फ़कीर जाकर दस घरों में भीख मांगता है और जो भी मिलता है उसे सभी मिलकर खा लेते हैं। नक्शबंदिया फ़कीर इनके विपरीत प्रतिदिन सायंकाल 5-10 के समूह में हाथों में चिराग लेकर भिक्षा मांगते हैं।

जुनीदियान

शाह फ़तेहउल्ला कर्खी के मुरीद सरी शख्ती के ख़लीफ़ा जुनैद बगदादी के आठ ख़लीफ़ा थे-(1) अबूबकर सिबली (2) शाह ममशाद अल्ला बहनूरी (3) अबू अली क़ातिब रुदवारी (4) असूदुद्दीन अबू अहमद (5) मोहीउद्दीन मंसूर हलाजी (6) उस्मान वकाफ़ (7) उस्मान मग़रिबी एवं (8) मुहम्मद रुमी उर्फ रुदेम।

जीबयान, कर्खियान, शख्तियान व जुनीदियान की तरीकत एक प्रकार की ही है। सोहरवर्दिया, तूसिया, गेरदिया, जाहिदिया, फिरदौसिया, क़ादरिया एवं खुलूतिया वैसे तो मुख्य रूप से जुनैद बगदादी की शिष्य परम्परा से ही सम्बन्धित है, लेकिन सोहरवर्दिया, तूसिया व गेरदिया तथा जाहिदिया अपना सिलसिला जुनैद बगदादी के बजाय हसन कमरी तक पहुँचाते हैं।

जुनैद बगदादी के एक मुरीद अबू अली क़ातिब रुदवारी हुए हैं। उनके मुरीद नेमतुल्लाशाह एक ख्यातनाम वली थे। उनके फ़कीर 'नेमतुल्लाशाही' कहलाते हैं। ये फ़कीर कफ़नी पहनते हैं और सर पर 'बारातुर्की' ताज रखते हैं। नेमतुल्लाशाह वली के मुरीद अली हासिम चहारजर्ब के अनुयायी फ़कीर 'हाशिमशाही' कहलाते हैं। ये लोग दाढ़ी, सर व भौंहे तथा मूँछे मुड़वाए रहते हैं। जुनीदियान सिलसिले में एक संत सैय्यद अहमद कबीर हुए हैं। इनसे 'सैय्यद रफाई' के फ़कीर निकले जिन्हें 'अहमदिया' फ़कीर भी कहा जाता है। ये लोग भी कफ़नी पहनते हैं और नंगे सिर रहते हैं। हाथ में एक गर्ज़ (नाग के फन जैसे शीर्ष वाली एक नुकीली छड़ी) रखते हैं। छड़ी के नुकीले हिस्से से अपनी छाती मुँह, आँख व सिर पर प्रहार कर जोर-जोर से आवाज़ निकालते हैं। बार-बार प्रहार के बाद भी इनके शरीर से न तो खून निकलता है और न ही चोट का कोई निशान बनता है।

गाविज़्दयान

यह ख़ानवादा बादशाह अबू ईसाक गावज़्दनी से जो मो. अब्दुल ख़फीफ़ का मुरीद था निकला है। कुछ लोगों का मत है कि गावज़्दनी अब्दुल ख़फीफ़ के ख़लीफ़ा शेख़ हसन आकर के मुरीद थे। अब्दुल ख़फीफ़ मोहम्मद रुदेम के शिष्य व जुनैद बगदादी के प्रशिष्य थे। दूसरी मान्यता है कि अब्दुल ख़फीफ़ शेख़ जाफ़र हदाद के मुरीद थे। यह सिलसिला क्रमश: अबा उमर अस्तखरी से ओबेसकर्नी तक जाता है। इस ख़ानवादे के अनुयायी गृहत्याग व एकान्तवास (खिलवत व अजलत) में रहकर ईश्वर स्मरण (शगल इस्मे आज़म) करते हैं। ये लोग दस के अंक को महत्त्व देते हैं और दस अक्षरों वाले ईश्वर के दस नामों का स्मरण करते हैं। दुवाएँ पढ़ते रहते है। अबू ईसाक गावज़्दगी के दो ख़लीफ़ा थे। मौ. मख़रुमी एवं शाह अब्दुल्ला हक़ीक़ी। कुछ

समय पश्चात् अब्दुल्ला हक़ीक़ी की शिष्य परम्परा में सैयद औलिया संदलपुरी हुए थे। इनके फकीर कफनी पहनते हैं और सिर पर औलियाशाही ताज रखते हैं। इनके अनुयायी 'औलियाशाही' कहे जाते हैं।

तूसियान

इस ख़ानवादे के जनक मौ. अबीबकर नसाज़ तूसी हैं। इनके ख़रक़े का क्रम अबी उस्मान मग़रिबी, अबू अली क़ासिम मिसरी, अबू अली रुदवारी से जुनैद बग़दादी तक पहुँचता है। तरीक़त में इस ख़ानवादे के अनुयायी संत इश्तियाल व बझर करते हैं, तथा मज़ामीर (बंशी जैसा वाद्य) बजाकर नग़मा सुनाते हैं। स्वयं नृत्य करते हैं और उस अवस्था में उनके मुँह से जो भी स्वर निकलते हैं उन्हें नात (ईश्वरीय संगीत) मानते हैं। यही उनकी इबादत है। मृत्यु को ये लोग निश्चित ध्रुव सत्य कहते हैं तथा मोमिन, काफ़िर, ग़नी और फ़कीर को समान सम्मान देते हैं।

अबी बकर के बाद शिष्य परम्परा में इमाम अहमद क़रानी, शेख़ ज़ियाउद्दीन अब्दुल सत्तार सहरवर्दी तथा नजमुद्दीन अहमद जैसे विद्वान हुए हैं। नजमुद्दीन अहमद अपने मुर्शिद से तालीम लेते और विद्वतापूर्ण बहस किया करते थे। लोगों ने इसीलिए उन्हें 'तामतुल कुबरा' कहा है। इनके मुरीद शेख़ मुहम्मद ख़ुलूती थे। वे तीन दिनों बाद केवल तीन लुक़मे खाकर नफ़्सकशी करते थे। अपने जामे को कफन और हुजरे को कब्र मानते थे। पाँच बार नमाज़ पढ़ते थे। एक पहर तिलावत व ज़िक्र तथा दूसरा पहर दर्स व इल्म की शिक्षा में व्यतीत करते थे। ज़ुहर की नमाज़ के बाद क़ुतुब का दर्स केवल सूफी संतों को बतलाते थे और रातों को जागरण करते हुए व्यतीत करते थे। उनके मुरीदों ने भी यही तरीक़ा अपनाया। ख़ुलूती के अनुयायी होने के कारण 'ख़ुलूतिया' कहलाए। इस सिलसिले में शेख़ मुज़फ़्फ़र ग़रकानी महान विद्वान और बड़े बुज़ुर्ग हुए है। मालवा में इनकी चर्चा हुआ करती थी। धार-माण्डू के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान और सूफी संत अब्दुल्ला शत्तारी ने अपने रिसाले में लिखा है-'शेख़ मुज़फ़्फ़र निशापुर में तशरीफ रखते हैं। सुना है अपने मुरीद को वे चाहें तो तीन दिन में खुदा से मिलाने की सामर्थ्य रखते हैं। मैंने भी (अब्दुल्ला शत्तारी) शेख़ से मिलने का इरादा किया और 6 महीने चलकर निशापुर पहुँचा। मैंने शेख़ को सचमुच में एक महान संत और कामिल पाया। बहुत दिनों तक उनके पास रहा और ज़िक्र नफी तथा असवात उनसे सीखे।' इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि धार और माण्डू के सूफी संत भारत के अन्य सूफी संतों के सम्पर्क में आते रहे और उनके मुरीदों को भी यहाँ सम्मान मिलता रहा।

शेख़ मुज़फ़्फ़र के मुर्शिद शेख़ इब्राहिम रस्कावादी थे। यहाँ से शिष्य गुरू परम्परा क्रमशः सैय्यदुल सादत निज़ामुद्दीन हुसेनी, शेख मुहम्मद ख़ुलूती व नजमुद्दीन कुबरा तक जाती है। नजमुद्दीन कुबरा के फ़कीर 'कुबरिया' तथा 'ख़िलवतिया' कहलाते थे। इनके तरीक़त में ज़िक्र 'शगल' हमेशा की यादे ख़ुदा तथा 'नफी व अस्बात' शग़ल=हमेशा की यादे ख़ुदा, इन्कार (खुद

का) अस्बात=इकरार–ख़ुदा मुख्य है। 'रिसाला ख़ानवादा–इ–जुनैदियान' में भी लिखा गया है कि जुनैद बग़दादी के ख़लीफ़ा मुहम्मद रुबेन थे। उनके शिष्य का नाम फ़ख़रुद्दीन ज़ाहिद था। ज़ाहिद के अनुयायी 'ज़ाहिदिया' कहलाए। वे 'दावते इस्म आज़म, आदिया, ज़िक्र नफी व असवात' की ही तरीक़त अपनाते थे। ज़ाहिद साहब की मज़ार मेरठ में है। इन सिलसिलों के कितने और कौन–कौन से संत धार आए, ज्ञात नहीं होता। ये सन्त स्वयं को कभी भी प्रकट नहीं करते थे।

फिरदौसियान

इस ख़ानवादे के जन्म की एक कहानी है कि शेख नजमुद्दीन कुबरा फिरदौसी और शेख़ अलाउद्दीन तूसी ने स्वयं कठिन साधना तपस्या की, किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। तब ये दोनों शेख़ ज़ियाउद्दीन अबुल हबीब सोहरवर्दी के पास गए और तीनों ने तय किया कि चलकर शेख़ वजीदउद्दीन अबू हफ्स इब्न उमर बिन अमूमा को मुर्शिद बनाया जावे। कुछ समय पश्चात् शेख़ से ज़ियाउद्दीन सहरवर्दी और शेख़ अलाउद्दीन तूसी को ख़िलाफ़त अता की तथा यह कहकर रवाना किया कि जाओ और जनसेवा करो। शेख़ नजमुद्दीन को शेख़ ज़ियाउद्दीन के हाथ में सौंपते हुए कहा– आगे चलकर यही तुम्हारा ख़लीफ़ा होकर नाम रोशन करेगा। सात सालों के बाद नजमुद्दीन ख़लीफ़ा बने और उनसे ख़ानवादा 'फिरदौसियान' का सिलसिला चला। दूसरा मत यह है कि ज़ियाउद्दीन सहरवर्दी का ख़रका शेख़ सैफुद्दीन बाकर को उनसे शेख़ बदरूद्दीन समरक़ंदी को और उनसे शेख़ रुकनुद्दीन फिरदौसी को मिला। इनके मुरीद 'फिरदौसी' कहलाए। रूकनुद्दीन के मुरीद शेख़ सरफुद्दीन अहमद याहया मुनीरी अपने समय के सुप्रसिद्ध लेखक हुए हैं। इनकी तरीक़त–'तज्कियाए नफ्स व मुख़ालफ़त में कोशिश करने की है।' अनुयायी 'तज्किया क़ल्ब' करते हैं, कम खाते हैं और 'हज़रात खम्स' कहे जाते हैं। किसी से कुछ मांगते नहीं जो मिल जाता है उसी में संतोष प्राप्त कर लेते हैं और उसी ख़ानवादे के संत बाबू बढ़ने को अपना प्रमुख मानते हैं।

सोहरवर्दियान

ख़्वाजा हसन निज़ामी का मत है कि 'सोहरवर्दिया' सूफी ही सर्वप्रथम भारत आए। मुल्तान के निवासी तत्वज्ञानी संत बहाउद्दीन ज़करिया के समय और उसके बाद यह सिलसिला सिन्ध, पंजाब, मालवा, गुजरात आदि प्रान्तों में फैला और अनेक स्थानों पर धार्मिक तथा सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना हुई। धार नगर भी उनका एक केन्द्र बन गया। ख़ानवादा सोहरवर्दियान शेख़ उल शय्यूख शहाबुद्दीन सोहरवर्दी से निकला है। शजरे के मुताबिक़ जुनैद बग़दादी के मुरीद शेख मुमशाद दिनवरी थे, उनके शेख़ अहमद असूद दिनवरी और उनके शेख़ मुहम्मद बिन अब्दुल्ला मारुफ 'बा अमूमा' हुए। शेख़ मुहम्मद के मुरीद शेख़ वजीहउद्दीन अलू ख़फस, उनके ज़ियाउद्दीन अबुल नजीब सहरवर्दी एवं उनके मुरीद शहाबुद्दीन सहरवर्दी हुए और इनके अनुयायी 'सहरवर्दीया' कहलाए।

कुछ विद्वानों का कथन है कि शेख़ उल शय्यूख़ का सिलसिला अक़ील बिन ज़्याद बखई

ख़ादिम जनाब अमीरूल मोमिनीन हज़रत अली से सम्बन्ध रखता है। उनके अनुसार शेख़ उल शय्यूख शहाबुद्दीन सोहरवर्दी ने ख़रक़ा अबी उल हसनात अहमद बिन उमर सूफी से पाया। उन्होंने मोहम्मद बिन मलिक से, उन्होंने इस्माइल कसरा से, उन्होंने दाऊद बिन मोहम्मद मारुफ से और उन्होंने ख़ादिम उल नकसरा से, उन्होंने अबी उल अब्बास बिन आवेश से ख़रक़ा पाया था। यही क्रम क्रमश: अबुल क़ासिम बिन रमजानी, अबी याक़ूब तुबरा व अबी अब्दुल्ला बिन उस्मान और अबी याक़ूब शहरजूरी तथा अबी याक़ूब असबी तक जाता है। याक़ूब असबी को यह ख़रका अब्दुल वाहिद ज़ैद से तथा उन्हें वह संत अक़ील बिन ज्याद से मिला था।

सोहरवर्दिया सूफी 'दावते असमा अज़ाम में मशगूल रहते हैं और 40 असमाए अज्ज़ाम सदैव उनके समीप रहते हैं।' कुछ विद्वानों का तर्क है कि धार में चालीस पीरों की दरगाहें वास्तव में 40 असमाए अज़्ज़ाम की उपस्थिति की प्रतीक हैं। सम्भव है संत अब्दुल्लाशाह चंगल उन्हीं में से कोई बड़े बुज़ुर्ग हों या फिर सोहरवर्दिया सिलसिले के हों जिन्होंने धार नगर को अपनी कर्मभूमि बनाई थी। शाह चंगल की विसाल तिथि भी रबी-उल-अव्वल 655 हिजरी बतलाई जाती है जो भारत में सोहरवर्दिया सिलसिले के प्रसार का स्वर्ण युग था। सूफी संत मख़दूमें जहानियाँ इसी सिलसिले के थे जिन्होंने 36 बार मक्का की यात्रा की थी। इनके चमत्कारों की कहानियाँ पूरे देश में विख्यात थीं। सैय्यद जलालुद्दीन सुर्खपोश और बुरहानुद्दीन कुतुबे आलम इस सिलसिले में ख्यातनाम संत हुए हैं। इस ख़ानवादे से अन्य अनेक सिलसिले भी निकले हैं।

फ़कीर 'देइगरपोश' सोहरवर्दियों से सम्बन्धित हैं। शहाबुद्दीन सोहरवर्दी के मुरीद अहमद मुत्तकी थे। अहमद मुत्तकी का एक मुरीद संत शेख सुलेमान 'देइगरपोश' था। इसके अनुयायी 'देइगरपोश' कहे जाते हैं। साधना के लिए ये लोग हमेशा रोजा रखते हैं। माँस नहीं खाते, तीन दिनों बाद जौ या वन-धान्य की रोटियाँ खा लेते हैं। स्वयं को छिपाकर रखने के साथ-साथ दोस्ती एवं घनिष्टता नहीं बढ़ाते। दुनियादारी से दूर रहकर खुदा की इबादत करना इनका मुख्य उद्देश्य होता है। चूँकि देइगरपोश स्वयं को प्रकट नहीं करते अत: उनके सम्बन्ध में जनसाधारण को भी बहुत कम ज्ञात हो पाता है।

'मोहद्दरवानिया' फकीरों का सिलसिला भी सोहरवर्दियों से जुड़ा हुआ है। शेखुल शय्यूख शहाबुद्दीन के मुरीद शेख़ नजीबुद्दीन अली बिन बरगश सीराजी के बाद क्रमश: शेख़ नूरुद्दीन अब्दुल समद नजरी, शेख़ सैयद जलालुद्दीन अस्फहानी व शेख नूरुद्दीन अब्दुल रहमान मिसरी, एक दूसरे के मुरीद बने। अब्दुल रहमान मिसरी से खरका अबूबकर ख़ाकी व उनसे शेख़ जैनुद्दीन को मिला। इन्हीं शेख़ जैनुद्दीन के मुरीद संत सैयद अली मोहद्दरवानी हुए जिनके अनुयायी ही कालान्तर में 'मोहद्दरवानिया' कहलाए।

सिलसिला 'बुखारिया' भी सोहरवर्दियों का ही एक उप समुदाय है। मौ. मख़दूम जहाँयान सैयद जलाल बुखारी को खरका शेख़ रुकनुद्दीन से प्राप्त हुआ था, और उन्हें वह बुज़ुर्गवार शेख़

सदरुद्दीन अबुल फजल ने दिया था। शेख़ सदरुद्दीन अबुल फजल शेख़ बहाउद्दीन जकरिया के शिष्य एवं शेखुल शय्यूब शहाबुद्दीन सहरवर्दी के प्रशिष्य थे। सैयद जलाल बुख़ारी के अनुयायी 'जलालिया फ़कीर' कहलाते हैं। ये लोग अपने साथ बकरे का एक सींग रखते हैं तथा ईश्वर ध्यान के समय सींग को होठों से लगाकर 'क़ुतुब-क़ुतुब' की आवाज़ बुलंद करते हैं। एक सिलसिला 'लोहानिया' फकीरों का भी है जो सूफी संत मख़दूम नूह के अनुयायी हैं। इनकी गुरु शिष्य परम्परा भी संत सहरवर्दी तक जाती है। मालवा में लोहानियों का बहुत प्रभाव रहा है। विदिशा नगर के बीच स्थित पहाड़ी लोहानी पहाड़ी कहलाती है और उसके ऊपर लोहानी शाह का प्राचीन स्थान बना हुआ है।

संत पीरानबंदगी भी इसी ख़ानवादा सोहरवर्दियान के सूफी हैं और भागलपुर में गंगा तट पर मदफून हैं। उनके अनुयायी 'पीरनशाही' फ़कीर कहलाते हैं। इसी प्रकार सोहरवर्दी संत शाह अब्दुल रज़्ज़ाक के अनुयायी 'रज़ाक़िया शाही' कहे जाते हैं। बुख़ारिया सिलसिले के दो संतों शाह मुर्तजा आनंद बुख़ारी और सैयद इमाम सादात ख़ाँ बुख़ारी से भी उप सम्प्रदाय निकले हैं। इनके फ़कीर क्रमशः मुर्तजाशाही और 'इमामशाही' कहे जाते हैं। ये फ़कीर लिबास फ़क़्र का जलाकर उसकी कजली से माथे पर अलिफ़ अल्लाह का कश्का (तिलक) लगाते हैं। अपनी लुंगी के किनारों को भी फाड़कर रखते हैं। जब किसी दूसरे फ़कीर से मिलते हैं तो 'इश्क़-इश्क़' का सम्बोधन करते हैं। यह सिलसिला ज़ियाउद्दीन अबुल हबीब तक अपना शजरा मानता है। फ़कीर 'हबीबशाही' शाह हबीब मुलतानी को, 'दूल्हाशाही' शाह दूल्हा दरयामी को और फ़कीर 'सैदाशाही' संत सैय्यदना सिरमुश्त बयाबानी को अपना मुर्शिद व वली मानते हैं। मूलतः तरीक़त में ये सब सोहरवर्दी होते हैं।

शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया के दो अन्य मुरीद भी थे-मियाँ मख़दूम नूह और बहाउद्दीन बहावल। बहावल के मुरीद सफी लाल शाह-यार हुसेन क़लंदर थे। इन सफी लाल शाह-यार हुसेन क़लंदर से क़लंदरिया फ़कीरों के नीचे लिखे सात समुदाय (गिरोह) निकले हैं।

(1) करमल जेहली-फ़कीर करमल जेहली अपने हाथों में कोड़ा रखते हैं एवं कमर में घुँघरू बाँधे रहते हैं। खूब नाचते हैं और मस्ती में आकर 'इश्क़ अल्लाह-इश्क़ अल्लाह' कहते हुए ज़ोर-जोर से अपने शरीर पर कोड़े से प्रहार करते हैं।

(2) 'सदासुहागन'-शाह सिकन्दर बूवली शाह हज़रत सफी लाल शाह-यार हुसेन के प्रिय मुरीद थे। सिकन्दर शाह बू अली का ख़लीफा शाह हाजी बू अली था। उनका मुरीद मूसा था। संत मूसा स्त्रियोचित व्यवहार करते थे और स्त्रियों के कपड़े पहने रहते थे। हाथ में चूड़ियाँ व नाक में नथ पहनकर स्वयं को 'सदा सुहागन' कहते थे। उनके अनुयायी अपनी भेषभूशा जो ख्वाजा सरा जैसी होती थी को मूसा का सोहाग मानते थे। ये फकीर तवाइफों के घर जाते हैं। तवाइफें इन्हें बहुत सम्मान देती हैं और अपनी बरकत मानती हैं।

(3) 'क़ासिम शाही'-यह समुदाय हाजी क़ासिम से निकला है। हाजी क़ासिम लाल शाहबाज़ हुसेन के सिलसिले में से थे। 'क़ासिम शाही' फकीर कमर में घुंघरू और घण्टियाँ बाँधे रहते हैं तथा धमाल करते हैं। इसे वे ईश्वर का अनावृत्त चिन्तन कहते हैं।

(4) 'बढ़ापगी'-इस समुदाय के फकीर सदैव ही अपना एक पैर आगे बढ़ाकर रखते हैं और 'बढ़ापगी' कहलाते हैं।

(5) 'बूदरशाही'-शाह बूदर के अनुयायी स्वयं को बूदरशाही फकीर मानते हैं।

(6) 'ख़ूगरशाही'-ये शाह मूसा खूगर को अपना मुरशिद मानते हैं और अपनी कोई आदत बनाकर कोई वस्तु हाथ में लिए रहते हैं। उसके बिना बेचैन हो जाते हैं।

(7) मुहीब अली के फ़कीर-लाल शाहबाज हुसेन का मुरीद संत मुहीब अली औरंगज़ैब था। इससे सूफ़ी फ़कीरों के तीन समुदाय अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं और स्वयं को (1) दुवाशाही (2) इमामशाही तथा (3) हसनशाही कहते हैं।

लाल शाहबाज़ के मुरीदों में एक मुरीद करीमुल्ला जेली हुए हैं। इनसे सूफ़ी फ़कीरों का 'करीमुल्लाशाही' समुदाय निकला। ये फ़कीर भी हाथ में कोड़ा रखते हैं और 'इश्क़ अल्लाह-इश्क़ अल्लाह' कह-कहकर अपने शरीर पर मारते हैं। इनमें और 'करमल जेहली' के फकीरों की तरीक़त लगभग समान है। इसी ख़ानवादा सोहरवर्दियान में एक संत रसूलशाह हुए हैं। इनके फ़कीर 'रसूलशाही' कहलाते हैं। ये लोग सोर बदन पर राख मलते हैं और सिर पर एक तिकोना रुमाल बाँधते हैं।

सूफियों का एक सिलसिला 'क़ादरिया' भी जुनैद बग़दादी से सम्बन्धित है। इसके अनुयायी ग़ौसुल सक़लैन मुहीउद्दीन अबू मुहम्मद अब्दुल क़ादिर बिन अबी सालेह बिन अब्दुल्ला जेली को अपना पीरो-मुर्शिद मानते हैं। इनके दो शिजरे माने जाते हैं। ग़ौसुल सक़लेन को शेख़ अबू सईद बिन मुबारक बिन अली मख़जूनी से खरक़ा मिला था। यह पुनीत खरक़ा जनाब रिसालत माआब हज़रत मुहम्मद मुस्तफा सल्ललाहो अलैहे वसल्लम से हज़रत असदुल्ला अल ग़ालिब अमीरुल मोमिनीन व अली इब्न अबी तालिब अलह सलाम को उनसे हज़रत इमाम अलह सलाम को, उनसे हज़रत इमाम हुसेन अलह सलाम को, उनसे हज़रत इमाम जैनुल आब्दीन अलह सलाम को व उनसे हज़रत इमाम मुहम्मद बाक़र को मिला। उन्होंने उसे हज़रत इमाम जाफ़र सादिक़ अलैहिस्सलाम को दिया। इसके बाद वह क्रमश: इमाम मूसा क़ादिम, ख़्वाजा ख़र्की, ख़्वाजा सरी सकती, सैय्यदुल तायफा अबुल क़ासिम जुनैद बग़दादी को मिला। जुनैद बगदादी के बाद वह शेख़ अबी बकर अब्दुल्ला सिबली, शेख़ अबुल फजल अब्दुल वाहिद बिन अब्दुल अज़ीज़ तमीमी व शेख़ अबुल फरह तरतूसी एवं उनसे शेख़ अबुल हसन अली बिन मुहम्मद बिन युसुफ अलहंकारी को मिला जो अबू सईद बिन मुबारक, बिन अली मख़जूनी के मुर्शिद थे।

एक दूसरे मत के अनुसार मुर्शिद-मुरीद की यह परम्परा इस प्रकार है-जुनैद बग़दादी के मुरीद शेख़ जाफ़र बिन युनुस उर्फ अबू बकर सिल्ली थे। उनके मुरीद अबुल अब्बास अहमद यमनी व उनके मुरीद अब्दुल वाहिद बिन अब्दुल अजीज तमीमी व क्रमशः शेख़ अबू फरह तरतूसी, हसन अली बिन मोहम्मद बिन युसुफ करसी अलहंकारी, शेख अबू सईद मखरूमी एवं मोहीउलद्दीन अब्दुल क़ादिर जीलानी हुए। यह भी कहा जाता है कि शेख़ुल आलम शेख़ अली अलह झुमरी से जो ख़रका शेख उमर हजाज को मिला था, वही ख़रक़ा उमर हजाज ने अब्दुल क़ादिर जीलानी को दिया था।

क़ादरियों के तरीक़ा का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि इस सिलसिले के सूफी संत-'ज़िक्र नफी व असबात के मुसम्मा होते हैं और बा आबर रूबरी इसका इस्तेमाल करते हैं, दावत अस्मए अज्जाम चहल इश्म करके दुवाएँ सैफी, दुवाएँ फरसिया, दुआएँ शेख व अन्य दुवाएँ पढ़ते हैं। मजलिस, सभा, रश्क व तवाहिद से दूर रहते हैं।' दुवाएँ रजाइम व हरदूम के पिर्दन वज़ीफे का ख़ाक़ा इन्हीं क़ादरियों का माना जाता है।

हज़रत अब्दुल क़ादिर जीलानी के ग्यारह लड़के थे, जिनमें से सात सूफी बने। इन सात सूफियों में से चार के अपने अलग-अलग क़कीर हैं। (1) अब्दुल अज़ीज जीलानी के फ़कीर 'अजीजिया' कहलाते हैं, और (2) अब्दुल जब्बार जीलानी के फकीर 'जब्बारिया' के नाम से जाने जाते हैं। इन्हीं अब्दुल जब्बार के एक मुरीद शाह हलीम थे। इनमें अनुयायी फ़कीर 'हलीमशाही' कहे जाते हैं। (3) सूफी अब्दुल वहाज जीलानी के फ़कीरों को 'वहाबिया' कहा जाता है। इनके एक मुरीद शाहगंज बख्श नौसा हुए हैं। उनके अनुयायी स्वयं को 'नौसाशाही' कहते हैं। चौथे सूफी नूरुद्दीन क़ादिर जीलानी के फ़कीर 'क़ादिरिया' कहलाए। नूरुद्दीन क़ादिर के चार ख़लीफ़ा थे-(1) सैयद अब्दुल क़ादिर कमीस, इनसे फकीर 'कमीसिया' निकले (2) अब्दुल्ला जोग, इनके मुरीद फकीर 'जोगशाही' कहलाए (3) तीसरे ख़लीफा नूरुद्दीन हुसेन तुर्राब अली क़ादिर थे। इनके मुरीद मीर अब्दुल्ला हाजी मन्दसौरी हुए। हाजी मन्दसौरी के मुरीद मीर सफी क़ादिरी और इनके मुरीद महमूद शाह कदही हुए। शाह कदही से फ़कीरों का जो नया समुदाय निकला वह 'कदहिया' कहलाए। इन्हीं महमूद कदही के मुरीद शाह आरिफ हुए और उनके अनुयायी 'आरिफशाही' फकीर कहे गए।

सूफी संत नूरुद्दीन क़ादरी के चौथे ख़लीफ़ा मो. अब्दुल रज़्ज़ाक हुए। इनके अनुयायी फकीर 'रज़्ज़ाकिया' कहलाते हैं। अब्दुल रज़्ज़ाक के बाद ख़ानवादे की ख़िलाफत क्रमशः अबू सालेह नसर, सैयद अब्दुल रऊफ, मुज़फ़्फ़र हरियाज़ी एवं हयात मीर कलंदर को मिली।

हयात मीर कलंदर और उनके शिष्यों से सूफी फ़कीरों के आठ समुदाय उद्‌भूत हुए। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

(1) मीरान खील-इस समुदाय के प्रवर्तक मीरान खील के शाह दहन, शाह सठन व शाह

इनायतुल्ला नामक तीन मुरीद थे। इनसे सूफी फकीरों के तीन उपसमुदाय 'दहनशाही' संठनशाही एवं 'इनायत शाही' प्रारम्भ हुए।

(2) गूटीशाही–सूफी संत शाह मुहम्मद गूटी इस समुदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। पहचान के लिए यह फ़कीर अपने पास एक पतली रस्सी रखते हैं जिसे वे कभी हाथ में और कभी गले में लपेटे रहते हैं।

(3) म्याँन ख़ील– इस समुदाय के प्रवर्तक हयात मीर क़लंदर के मुरीद मौ. क़ासिम सुलेमान सूफी हैं। इनका मज़ार चुनारगढ़ में गंगा तट पर स्थित है। इस सिलसिले के फ़कीर 'गुलसफा पहाड़ी' (मक्का के समीप स्थित पहाड़ी की एक छोटी कंकरी) सदैव अपने हाथ में रखते हैं। एक तस्मा (चमड़े का लम्बा टुकड़ा) गले में बाँधते हैं तथा एक प्याला चौबी (लकड़ी का प्याला) भी साथ रखते हैं। इश्क़ अल्लाह के समय 'मियाँ–मियाँ' कहते रहते हैं।

(4) शाह लतीफुल्ला बर्री शाही समुदाय

(5) गिरोह ख़ाकसारी–यह समुदाय ख़ाकसार अपरम्पार से उद्‌भूत हुआ है। संत अपरम्पार की मज़ार दौलताबाद में पहाड़ी के समीप विद्यमान है।

(6) फ़कीर सदूशाही–यह सिलसिला सदरूद्दीन अंसारी ने प्रारम्भ किया था। इश्क़ अल्लाह के वक्त इनकी सदा 'मीरान–मीरान' की होती है।

(7) बहलोल बहरदरिया के फ़कीर–सूफी संत बहरदरिया के मुरीदों से फकीरों के चार उप समुदाय (गिरोह) निकले हैं। 1. मुकीम शाही–बहलोल बहरदरिया के मुरीद मुक़ीमशाह के अनुयायी संत फ़कीर मुकीमशाही कहलाते हैं। 2. अरजानशाही– बहलोल के दूसरे मुरीद दीवान अरजान शाह थे जिनकी मज़ार पटना में है। इनके अनुयायी फ़कीर 'अरजानशाही' कहे जाते हैं। 3. तीसरे मुरीद शाह हुसैन टेंटा थे। उनसे 'हुसेनशाही' फ़क़ीर हुए। वैसे ये चारों फ़कीर मूलतः बहलोलशाही हैं किन्तु एक वर्ग ऐसा भी है जो स्वयं को 'बहलोलशाही फ़कीर' कहकर अपनी अलग पहचान रखता है।

(8) महकमशाही–महकमुद्दीन मुहम्मद अस्तहवान ख़्वार मारुफ अस्तरख़्वार के एक मुरीद मुकीम शाह हुए हैं। इनसे फ़कीरों का जो सिलसिला निकला उन्हें भी 'मुक़ीमशाही' कहा जाता है। परन्तु वे शाह महकाम के मुक़ीमशाही के रूप में पहचाने जाते हैं।

सूफी संतों के 'मदारिया' सिलसिले के सम्बन्ध में मतभेद हैं। 'महबूबुल आरफीन' के अनुसार तैफ़ूरशामी से ऐनुद्दीन शामी, रमनुद्दीन अलसामी, इमाम अब्दुल्ला अलम बरदार और अमीरूल मोमिनीन अबू बकर सिद्दीक़ व हज़रत अली तथा हुज़ूर पाक तक मदारियों का सिलसिला जाता है। अतः शाह मदार तैमूरिया नहीं है। किन्तु इस सिलसिले के कुछ विचारक

स्वयं को तैमूरिय मानते हैं। उनके अनुसार वदीउद्दीन शाह मदार को ख़रका शेख़ मुहम्मद तैफ़ूरशाही से मिला था। यह पवित्र ख़रका हुज़ूरपाक से हज़रत अली को, उनसे हसन बसरी, हबीब अज़मी, ख़्वाजा वायजीद बस्तामी, शेख़ तैमूर सज्जादी, शेख़ महमूद, शेख़ इब्राहिम, शेख़ सऊद तैमूरी जैसे महान लोगों से क्रमशः मिलता हुआ शेख़ मुहम्मद तैमूरशाही तक आया था जिसे उन्होंने शाह मदार को दिया।

मदारिया संत सिर पर बड़े-बड़े बाल रखते हैं, शरीर पर भभूत लगाते हैं, सिर गर्दन या बदन पर लोहे की एक जंजीर लपेटे रहते हैं। सिर पर काली रूमाल बाँध रखते हैं और लहराता हुआ एक काला झंडा लिए रहते हैं। रोजा व नमाज का पालन नहीं करते, तहमद पहनते हैं या लंगोट बाँधे रहते हैं। आग के पास धूनी लगाकर बैठे रहते हैं। मद्यपान से भी कुछ फ़कीर परहेज नहीं रखते और आराधना के समय 'तमदार' शब्द को जोर से बोलते हैं, धमाल कूदते हैं। वद्दीउद्दीन शाह मदार 14 वर्षों तक जौनपुर में रहे, बाद में 14 वर्ष 5 महीने दिल्ली, 14 वर्ष 5 महीने अजमेर, 14 वर्ष 5 महीने मुहम्मदाबाद (कालपी) में तथा 35 वर्षों तक मकनपुर में रहकर साधना की। दस जमादी उल अव्वल 940 हिजरी में उनका इन्तकाल हुआ। मज़ार मकनपुर में स्थित है। इनके अनुयायी 'मलंग' फ़कीर कहे जाते हैं।

अब्दुल वाहिद ज़ैदी के ख़ानवादे

ख़ानवादा ज़ैदाँ

इस ख़ानवादे के संत चाहे बयावान हो या आबादी सदैव खिलवत में रहते हैं। प्रत्येक मुरीद हाफ़िज़ होता है और क़ुरान पाक़ का ज्ञाता रहता है। सदैव रोजा रखते हैं। तीसरे या चौथे दिन जंगली फल या वन-धान्य की रोटी से अफ़्तार कर लेते हैं। किसी भी जीवधारी यहाँ तक कि साँप-बिच्छू और जूं या पिस्सू तक को नहीं मारते हैं, न सताते हैं। यदि जूं हो जाय तो उन्हें कपड़ों से या सिर से नहीं हटाते। न घर बसाते हैं, न ही ईश्वर निर्मित संसार की किसी वस्तु अथवा जीवधारी के प्रति कोई दुर्भावना ही रखते हैं। शहर या गाँव नहीं आते। देने पर प्रायः कुछ नहीं लेते और यदि कुछ मिल ही गया तो स्वयं उसका उपभोग न करके फ़कीरों को बाँट देते हैं। यदि उन्हें कोई पकड़कर बेच भी दे तो बिक जाते हैं कोई प्रतिरोध नहीं करते। सदैव पुराने कपड़ों में-जैदापोश रहते हैं। गुदड़ी लपेटे रहते हैं। पुराने कपड़े बीनकर उन्हें साफ कर लेते हैं और नमाज़ पढ़-पढ़कर सीते हैं। यदि वह भी न मिलें तो पत्तों से अपना बदन छिपाए रहते हैं। प्रायः यात्राएँ करते रहते हैं।

अयाज़यान

यह ख़ानवादा शेख़ फजील बिन अयाज़ ख़लीफ़ा शेख़ अब्दुल वाहिद ज़ैदी, ख़लीफ़ा शेख़ हसन बसरी से निकला है। इनके मुरीद स्वयं को 'अयाज़यान' कहते हैं। ये संत घायल जैसे मजरूह व अकेले-तनहाई में रहकर इबादत करते हैं। एक स्थान पर अधिक समय नहीं रूकते, प्रायः यात्राएँ करते रहते हैं। परिवार से कोई लगाव नहीं रखते, नया वस्त्र नहीं पहनते,चिथड़ों

का ख़रक़ा बनाते हैं। किसी से कुछ नहीं मांगते। यदि ज़रूरत की कोई वस्तु कोई स्वेच्छा से दे तो ले लेते हैं। रात भर जागते रहते हैं और प्रात: होते ही चल देते हैं। नंगे पैर रहते हैं हमेशा रोज़ा रखते हैं, तीन दिन में अफ़्तार करते हैं। भूख से कभी बेचैन नहीं होते। ईश्वर की सृष्टि को समभाव से देखते हैं, किसी से बैर नहीं करते।

अधमियान

इस ख़ानवादे के प्रवर्तक सुलतान इब्राहिम ओधम थे। इन्हें एक बार स्वप्न में एक ऊँट मकान की अहालिफा पर चढ़ा हुआ दिखा और एक संत यह कहते हुए दिखे कि जैसे यह दृश्य आश्चर्यजनक है 'वैसे ही बादशाह रहकर ख़ुदा को ढूँढ पाना है।' एक दिन एक ऊँट की अचानक मृत्यु भी इब्राहिम ने देखी और संसार से विरक्ति हो गई। सल्तनत छोड़कर सूफी संत फ़जील अयाज़ के मुरीद हो गए। कालान्तर में इब्राहिम ओहदम के मुरीद एवं अनुयायी ओधमियान अथवा अधमियान कहलाए। इस ख़ानवादे के संत दिन रात चाहे यात्रा हो या पड़ाव 'ज़िक्र जली' यानी ईश स्मरण में तल्लीन रहते हैं सोहबत से दूर रहते हैं, किसी वस्तु की लालच या इच्छा नहीं करते। बिना मांगे यदि कुछ मिल जाता है तो उसे गरीबों को दे देते हैं। गरीब का दिया हुआ भोजन 2-3 लुकमा खा लेते हैं। इब्राहिम का ख़रका हज़ीफ़ को मिला, हनजीफ़ा ने उसे हिबरतुल बसरी को देकर अपना ख़लीफ़ा बनाया। हिबरतुल बसरी के अनुयायी 'हबीरयानी' कहे जाते हैं।

हबीरयान

हबीरयानी सूफी संत जंगलों में मुजर्रद रहते हैं, कंदमूल एवं जंगली फल खाते हैं। ये वस्तुएँ भी उसे 5 दिन में केवल एक बार खाते हैं। लैलोनहार (रात दिन) बावज़ू-पवित्र रहकर नमाज़ पढ़ते रहते हैं। आबादी में नहीं जाकर दुनियादारी से दूर रहते हैं। देने पर भी कुछ नहीं लेते। मन की पवित्रता को महत्त्व देते हैं। ख़्वाजा हबीरतुल बसरी के मुरीद ख़्वाजा अली दीनवरी थे और उनके शेख़ अबुल इसहाक़ हुए हैं।

चिश्तियान

ख़ानवादा चिश्तियान शेख़ अबुल इसहाक़ मुरीद अली दीनवरी से निकला है। शेख़ अली दीनवरी ने एक दिन अबुल इसहाक़ से पूछा- तू कहाँ का बाशिन्दा है। अबू इसहाक़ ने कहा- चिश्त का। दीनवरी ने फरमाया- जा ख़्वाजगी चिश्त की तुझे मिली। यूँ नये ख़ानवादे की शुरूआत हुई। ख्वाज़गाने चिश्त पाँच व्यक्ति थे-(1) ख़्वाजा अबू ईसाक चिश्ती (2) ख़्वाजा अहमद चिश्ती (3) ख़्वाजा अबू मुहम्मद चिश्ती (4) ख़्वाजा मौदूद चिश्ती तथा (5) ख़्वाजा अबू युसुफ़ चिश्ती।

अबू इसहाक चिश्ती ने ख़ानवादे का खरका अबू दीनवरी से पाया था, उन्हें वह ख़्वाजा हबीरतुल बसरी से मिला था। यह क्रम ख़्वाजा हजीफ़ा इब्राहिम ओहम, फ़जील अयाज़, अब्दुल वाहिद ज़ैद से हसन बसरी तक और हसन बसरी से हज़रत अली अलैहिस्सलाम व हुज़ूर पाक

तक जाता है। हसन बसरी के मुरीद अब्दुल वाहिद ज़ैद के दो ख़लीफ़ा थे-(1) अब्दुल रज़्ज़ाक व (2) फ़जील बिन अयाज़। फ़जील बिन अयाज़ के भी दो ख़लीफ़ा थे (1) शेख़ अब्दुल्ला एवं (2) इब्राहिम ऊधम। इब्राहिम ऊधम के भी दो ख़लीफ़ा हुए हैं-(1) ख़्वाजा हमीदुद्दीन एवं (2) ख़्वाजा हजीफ़ा मरअली। ख़्वाजा हजीफ़ा के एक ख़लीफा अमीनुद्दीन इब्रतुल बसरी थे। बसरी के दो ख़लीफा हुए-(1) शाह वायजीद एवं (2) अलाउद्दीन आरिफ ममशाद अली दीनवरी। इन्हीं दीनवरी के ख़लीफा ख़्वाजा अबू इसहाक चिश्ती व ख़्वाजा नसीरूद्दीन अबू महमूद चिश्ती थे जिन्हें ख़्वाजगाने चिश्त में गिना जाता है।

चिश्ती संत गाँवों-कस्बों (कुर्रियात) व शहरों में ख़ानक़ाहें बनाते हैं। लोगों को हिदायत करते हैं। दुनियादारी से दूर रहकर इबादत में लगे रहते हैं। जनसेवा करते हैं। दीन-दुखियों से मुहब्बत रखते हैं। भूखे व प्यासे रहकर भी दुखियों की सेवा करते हैं। ग़रीबों के साथ 'हम लुकमा' होना पसंद करते हैं। ध्यान, मनन व चिन्तन के लिए तीन मराकबे करते हैं-(1) नफ्स अल्लाह (ईश्वर से लौ लगाना) (2) मराक़बा बैत तथा (3) मराक़बा ईना व ज़िक्र नफी व असवात व जहर खफी।

अबू इसहाक चिश्ती का ख़रक़ा क्रमश: ख़्वाजा अबू अहमद चिश्ती, अबू मोहम्मद चिश्ती, अबू युसुफ चिश्ती, ख़्वाजा मौदूद चिश्ती, हाजी शरीफ जंदनी व उस्मान हारूनी से 'हिन्दुलवली' ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती को मिला था। ख़्वाजा साहब के भी कुछ फकीर 'मलंग' कहे जाते हैं। मलंगों के पीर की असली दरगाह जालौन में है। ये मलंग भी हमाल कूदते हैं। ख़्वाजा मुईनुद्दीन के एक मुरीद सैयद अब्दुल जलील थे। उनके फ़कीर 'जलीलिया' कहे जाते हैं। एक अन्य मुरीद शाह अब्दुल मानी थे। उनके अनुयायी 'मनियायी' फ़कीर कहे जाते हैं।

ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के पश्चात् ख़िलाफ़त का ख़रका ख़वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी को मिला। इनके दो ख़लीफ़ा थे-शाह अस्कान आशिक़ और शेख़ फरीदुद्दीन गंज-इ-शकर। आशिक़ के अनुयायी फ़कीर 'आशिक़या' कहलाते हैं। शेख़ फरीदुद्दीन गंज-इ-शकर पाक पहन में रहे और वहीं उनका विसाल हुआ। इनके भी दो ख़लीफा हुए हैं-(1) अलाउद्दीन अली अहमद साबिर फरजिन्द ख़्वाहिर शकरगंज तथा (2) सुलतानुल मशायिख़ निज़ामुद्दीन औलिया।

अलाउद्दीन अली अहमद साबिर से अनुयायी फ़कीरों का 'साबिरिया' समूह निकला। शेख़ साबिर से और सिलसिले भी प्रारंभ हुए थे। इनके मुरीद क्रमश: शमसुद्दीन तुर्क पानीपती वाले, जलालुद्दीन पानीपती वाले, शेख़ अब्दुल हक रदौलवी, शेख अहमद आरिफ रदौलवी व उनके मुरीद शेख़ मुहम्मद तथा अब्दुल क़द्दूस गंगोही हुए। अब्दुल क़द्दूस गंगोही के दो मुरीद हुए-शेख़ रुकनुद्दीन गंगोही एवं कुतुब आलम शेख़ जलालुद्दीन महमूद। शेख़ रुकनुद्दीन गंगोही के मुरीद शेख़ अब्दुल वाहिद फ़ारूक़ी हुए। इस सिलसिले में आगे चलकर शेख़ जलालुद्दीन महमूद थानसरी, शेख़ निजामुद्दीन अब्दुल शकूर थानसरी, मौ. अबू सईद तथा शेख़ सादिक़ मुहम्मद बिन शेख़ फतेहउल्ला हलमी गंगोही जैसे संत हुए हैं।

औलिया के शिष्यों का धार आगमन

शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-इ-शकर के दूसरे ख़लीफ़ा सुलतानुल मशायिख़ निज़ामुद्दीन औलिया के फ़कीर 'निज़ामिया' कहलाते हैं। इन्होंने दिल्ली को अपना केन्द्र बनाया। इनके हज़ारों मुरीद थे जिन्हें औलिया ने भारत भर में अलग-अलग मुख्यालय निर्धारित करते हुए जनसेवा एवं सिलसिले के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से रवाना किया। शाह मुंतजिबुद्दीन मारूफ़ बजर जरी बख़्श के साथ औलिया ने अन्य सात सौ मुरीद तथा शेख़ बुरहानुद्दीन के साथ चार सौ मुरीद देकर दोनों संतों को दौलताबाद के लिए रवाना किया। शेख़ हसामुद्दीन को पहन गुजरात भेजा गया तथा शेख़ युसुफ को एरज के लिए रवाना किया गया। मौलाना मुग़ीसुद्दीन को उज्जैन तथा मौलाना कमालुद्दीन व मौलाना ग़्यासुद्दीन को धार में रहकर जनसेवा करने के निर्देश दिए गए। इसी प्रकार शेख़ वजीहउद्दीन को चंदेरी, शेख़ अजी अवधी सिराजुद्दीन उस्मानी को बंगला तथा मीर सदा सर्फ को कछोछा की ख़िलाफ़त देकर रवाना किया गया। यूँ मालवा में चंदेरी, उज्जैन व धार के लिए कुल चार महान संत पदस्थ किए गए। इनमें से अकेले धार के लिए दो संतों को भेजा जाना विशेष महत्त्व रखता है।

मुंशी करीम अली ने मौलाना कमालुद्दीन का परिचय देते हुए लिखा है कि इनके पिता का नाम शेख़ वायजीद और पितामह का नाम शेख़ नसीरूद्दीन था जो शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-इ-शकर के प्रपौत्र थे। कुछ लोगों का मत है कि मौलवी कमालुद्दीन वंश परम्परा में हज़रत उमर फ़ारूक के ख़ानदानी थे और उनका जन्म 636 हिजरी (1238 ईस्वी) बरोज़ पीर माह ज़िब्हिज़ को दिल्ली में हुआ था। हिजरी 690 में (1291 ईस्वी) निज़ामुद्दीन औलिया ने इन्हें ख़िलअत ख़िलाफ़त देकर धार के लिए रवाना किया। इन्हें दिल्ली में रहते हुए औलिया के सुयोग्य मुरीदों में गिना जाता था। कहा जाता है कि जब वे धार आए तब कोई पूरनमल नामक राजा यहाँ का शासक था। मौलाना कमालुद्दीन की प्रतिभा से प्रभावित होकर पूरनमल ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। यह पूरनमल कौन था यह तथ्य आज भी इतिहास में छूटा हुआ है। धार आने से पूर्व मौलाना कमालुद्दीन कुछ समय उज्जैन भी रुके थे। माण्डू सुलतान महमूद बिन नासिर शाह खिलजी के राज्यकाल में (2 मई 1511 से 2 अप्रैल 1531 ईस्वी) मौलाना कमालुद्दीन की मजार के ऊपर एक भव्य गुम्बज और आलीशान मकबरे का निर्माण किया गया। इस मकबरे में मिटे हुए कुछ अक्षरों वाला एक शिलालेख इस प्रकार पढ़ा गया है-

'सुलतान नसीरूद्दीन व वायजीद मुदर्रिस अल्लाह व वली उल मोमिनीन-
ई रोजा रिजवा वकीन जेबो जमाल दीन कुब्बा बरनूर चनीन हुस्न व कमाल.....'

'ब परदा संगो खाजा आब-ई-लाल-व हक्का दर-दर खानक़ाह देहलीज बा कोशक व बा गंगर-इ-हम्चू हिलाल हमजप-इ-असाइस बर अहले वली हम अरजप-इ-मशगूली हज़रत साहेब हाल दर अहद हुमायूं खुद आं शाहजहाँ।

महमूद शाह ख़िलजी ख़ुर्शाद मिसाल दर हफ्त सद व सिस व एक अरास्ता देहलीज, अरास्ता बाद कस्र उमरस हमासाल बर दरगाह ई दो शाह दीनो दुनिया महमूद गदा अफतादा दर हक़ीक़त हाल चूं नेस्त सलह आम दर ई दर हमाराह बासद के सुद दो कस गुनीद ताल।'

मौलाना कमालुद्दीन के प्रयासों से धार नगर के शेख़ों व संतों की गणना देश के पवित्रतम संतों में होने लगी थी। इस ख्याति का राजनीतिक लाभ भी लिया जाता था। ईस्वी सन् 1513-14 में जब माण्डू सुलतान महमूद ख़िलजी (द्वितीय) चंदेरी की ओर गया हुआ था, तब गुजरात सुलतान मुज़फ़्फ़र शाह द्वितीय ने धार व माण्डू पर अधिकार करने की एक योजना बनाई। उसने क़व्वामुल मुल्क व इख़्तियारूल मुल्क़ नामक दो व्यक्तियों को धार भेजकर यह समाचार फैलवाया कि सुलतान मुज़फ़्फ़र शाह धार के शेख़ों व संतों के दर्शनार्थ यहाँ आ रहा है। धार आकर उसने अब्दुल्लाशाह चंगल और कमालुद्दीन मौलवी की मज़ारों के दर्शन किए। गुप्तचरों ने उसे सूचना दी कि धार और माण्डू की सैनिक सुरक्षा बड़ी सुदृढ़ है तब वह दुखी मन से वापस गुजरात लौट गया। स्पष्ट है कि उस समय इन संतों के मक़बरों का शायद निर्माण नहीं हो पाया था।

धार में मौलाना कमालुद्दीन के मक़बरे के प्रांगण में कई बुजुर्गों का मुकाम है। मौलाना हिसामुद्दीन व सुलतान महमूद ख़िलजी तथा उसकी बहन नूरजहाँ के मकबरे बने हुए हैं। अकल कुवाँ है तथा अनेक औलिया अल्लाह की मज़ारे हैं। ऐसी मान्यता है कि मौलाना हिसामुद्दीन मर्तबे में कुतुब हैं। मौलाना कमालुद्दीन के समय सूफी संत निज़ामुद्दीन महमूद इलाही के ख़लीफ़ा होकर धार आए थे। यहीं पर 709 हिजरी में (ईस्वी 1309) उनका विसाल हुआ। इनका मज़ार मौलाना कमालुद्दीन के मक़बरे के पूर्व की ओर भग्नप्राय प्राचीन मक़बरे में स्थित है। इसी मक़बरे में सूफी संत सलीमुद्दीन ग़ौस की भी मज़ार है। ऐसी मान्यता है कि उन्हें मौलाना हिसामुद्दीन में हाजिरी के लिए दिल्ली से भेजा गया था। लम्बे समय तक धार में रहकर उन्होंने साधना की थी।

मौलाना कमालुद्दीन के मकबरे की दक्षिणी दीवाल से लगी हुई सैयद जमालुद्दीन ग़ौस की मज़ार है। हज यात्रा के समय आब-ए- ज़मज़म में इनका कोड़ा गिर गया था। इससे वे दुःखी थे। मौलाना कमालुद्दीन ने कहा कि देखो तुम्हारा कोड़ा अकलकुएँ में पड़ा हुआ है, उसे ले लो। कोड़ा पाकर सैयद जमालुद्दीन बड़े प्रसन्न हुए और लम्बे अरसे तक यहीं रहकर तपस्या करते रहे। कहा जाता है कि इसी प्रांगण में मौलाना कमालुद्दीन की ख़ानक़ाह थी और बेशुमार बुजुर्गों ने यहाँ रहकर तपस्या की थी।

मौलाना कमालुद्दीन के समय में ही शेख जहीरूद्दीन कादरी भी धार आए थे। मर्तबे में वे भी क़ुतुब कहे गए हैं। वे राजा पूरनमल के समय यात्रा करते हुए यमन से यहाँ आए थे। उनकी मज़ार धूप तालाब श्मशान घाट के समीप एक खेत में बनी हुई है।

मौलाना कमालुद्दीन के साथ ही एक अन्य महान सूफी संत मौलाना ग़यासुद्दीन चिश्ती भी धार आए थे। वे यहाँ रहकर तालीम देने का काम करते रहे। मरतबे में उन्हें भी क़ुतुब कहा गया है। उनका मजार दिलावरा रोड पर एक छोटी टेकरी के ऊपर बना हुआ है और स्थानीय लोगों में अरीठा पीर के नाम से जाने जाते हैं। मौलाना ग़यासुद्दीन, शेख़ इब्राहिम व मौलाना मुगीसुद्दीन उज्जैनी के भाई थे। तीनों भाई निज़ामुद्दीन औलिया के मुरीद व वली हैं। 'दर्स तदरीस' (पठन-पाठन) को यह इबादत मानते थे। कहा जाता है कि परदा कर लेने के बाद भी यदि कोई इनकी क़ब्र के समीप किताब खोलकर पढ़ने बैठ जाता था तो मौलाना क़ब्र के अन्दर से सबक़ पढ़ाते थे। कुछ समय बाद कोई बड़ा संत इनकी क़ब्र पर आया और पढ़ाने की आवाज़ सुनी। इस पर उसने निवेदन किया कि आपका मरतबा बहुत ज़्यादा है लेकिन अभी आप जो कुछ कर रहे हैं वह अमल शरा के अनुरूप नहीं है। कृपया पढ़ाना बंद कर दें, ताकि ख़िलाफ शरा काम करने की परम्परा न बन जाय। क़ब्र से आवाज़ आई कि अब ऐसा ही होगा, लेकिन जो विद्यार्थी क़ब्र पर पढ़ने आएगा उसके बुद्धिमान और विद्वान बनने के लिए हम दुआ करेंगे।

इस प्रकार चिश्तियों के माध्यम से धार नगर एक सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में विकसित होता गया। बेशुमार बुज़ुर्गों का मुक़ाम होने के कारण इस नगर को पवित्र ज़ियारतगाह कहा जाने लगा।

निज़ामुद्दीन औलिया के एक ख़लीफ़ा शाह क़ुतुब आलम नूरूल हक़ थे। इन्हीं के ख़लीफ़ा ख़्वाजा बंदानवाज़ गेसू दराज़ हैं जो गुलबर्गा में आसूदा हैं। दक्षिण के लोग उन्हें बहुत सम्मान देते रहे हैं। निज़ामुद्दीन औलिया के एक ख़लीफ़ा शेख़ नसीरूद्दीन अवधी थे। जो 'वा-चिराग-देहली' नाम से प्रसिद्ध हुए। ख़्वाजा उस्मान हारूनी ने जो ख़रक़ा बतौर दी ताई पैबंद लगा हुआ सुलतानुल मशायिख़ ख़्वाजा मुईनुद्दीन मोहम्मद हसन संजरी चिश्ती को दिया था, वही ख़रक़ा इन्होंने बख्तियार काकी को दिया। काकी से वह गंज-इ-शकर को मिला, उन्होंने निज़ामुद्दीन औलिया को दिया। यह वही ख़रक़ा था जिसे निज़ामुद्दीन औलिया ने चिराग़ देहलवी को दिया था। नसरूद्दीन चिराग देहलवी के प्रिय मुरीद सैयद मुहम्मद गेसू दराज थे। चिराग-देहलवी ने अपनी मृत्यु से पूर्व यह कहा कि गेसू दराज मुझे ग़ुस्ल देगा और ख़रका अतिया निज़ामुद्दीन औलिया में लपेटकर मय असा व मुसल्ला (घड़ी व नमाज़ पढ़ने की दरी सहित) क़ब्र में दफ़न करेगा। गेसू दराज़ ने आज्ञा का पालन किया, लेकिन ख़रक़े का उत्तराधिकार न मिल पाने से बहुत दुःखी हुए और दिल्ली छोड़कर दक्षिण चले गए। सम्भव है दक्षिण जाते समय वे धार भी रुके हों। गेसू दराज़ के फ़कीर 'बंदा नवाज़ी' कहलाते हैं। चिराग़ देहलवी के एक मुरीद शाह करीम थे। उनके अनुयायी फ़कीर 'करीमिया' कहे जाते हैं।

चिश्तिया ख़ानवादे से संबंधित कई प्रकार के फ़कीरी समुदाय मिलते हैं। क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागोरी से 'नागोरिया' जलालुद्दीन तबरेज़ी से 'तबरेज़िया', शेख़ निज़ामुद्दीन अबुल मवेद से 'मवेदिया' शेख़ मूसा ताब से 'शेख़शाही' ख़्वाजा मेहमूद मोहीनिया दोज़ से 'मोहीनिया' शाह

ख़ज़र से 'ख़ज़रिया' शेख़ नजीबुद्दीन मोंकल से 'मकतूलिया' शाह गुरदेज़ से 'गुरदेजिया' शाह आरिफ से 'आरफिया' शेख़ क़ुतुबद्दीन मोज़ से 'मौज़िया' मौलाना फ़ख़रूद्दीन ज़राबी से 'ज़राबिया' मौलाना फ़ख़रूद्दीन मरोज़ी से 'मरोज़िया' मौलाना वजीहउद्दीन पायरी से 'पायरिआ' सैय्यद सदरूद्दीन राजू क़त्ताल से 'क़त्तालिया' एवं शेख़ प्यारे से 'प्यारेशाही' फ़कीरों के स्वतंत्र समुदाय विकसित होकर प्रचलित हुए। पीराने धार ऐसे फ़कीरों के लिए ज़ियारत गाह बन गया, क्योंकि यह नगर उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर जाने वाले यात्री संतों का मुख्य पड़ाव था। कहा जाता है कि एक बार वजरजरी बख़्श और मौलाना बुरहानुद्दीन के साथ उनके 1100 मुरीद आकर धार में रुके थे। दिल्ली से दौलताबाद जाते समय मुहम्मद तुग़लक भी धार में रुका था। उस समय सुलतान के साथ इब्नबतूता भी दौलताबाद जा रहा था। उसने अपने यात्रा वृतान्त 'रेहला' में लिखा है कि धार में शेख़ इब्राहीम की बहुत बड़ी ख़ानक़ाह थी। वे तरबूज़ की खेती करवाते थे। ख़ानक़ाह का खर्च उठाने के बाद भी शेख़ के पास बचत में 13 लाख टके उपलब्ध थे।[4] शेख़ इब्राहिम सम्भवतः वही है, जिन्हें मौलाना ग़्यासुद्दीन का भाई कहा गया है।

शेख़ शर्फुद्दीन बू अली अपने जमाने के बहुत बड़े विद्वान थे। इन्हें क़लंदर कहा जाता था। इनके अनुयायी संत भी बाद में 'क़लंदर' कहलाए। शर्फुद्दीन बू अली दिल्ली के शाही मदरसे में अध्यापक थे। एक दिन वे ज़रूरी काम से बच्चों को छुट्टी देकर घर चले गए। एक विद्यार्थी को मदरसे में रखे ग्रंथों की रखवाली का काम सौंप दिया था। इसी बीच सूफी संत शम्स तबरेज़ मदरसे में आए और किताबों की रखवाली करने वाले विद्यार्थी से कुछ किताबें मांगी। विद्यार्थी ने जो पुस्तकें दीं उन्हें देख-देखकर पानी के एक गहरे हौज़ में डाल दिया। संयोग से उसी समय क़लंदर सा. घर से वापस मदरसे आए। शम्स तबरेज़ को किताबें पानी में डालते देख बहुत नाराज़ हुए। तबरेज़ ने कहा मौलाना खफा क्यों हो रहे हो, लो अपनी किताबें ले लो, मैं तो उनकी धूल निकालना चाहता था। ऐसा कहकर उन्होंने पानी में पड़ी किताबें बाहर निकालीं। सभी पुस्तकें सूखी थीं और हाथ लगाने पर धूल उड़ती थी। सर्फुद्दीन बू अली आश्चर्य चकित रह गए और अपना मुरीद बना लेने की प्रार्थना की। शम्स तबरेज़ ने कहा अभी नहीं जब कभी तबरेज़ आना तो पूछ लेना कि झूठों के मुहल्ले में शम्स कहाँ रहता है। वहीं तुम्हें मुरीद बनाऊँगा।

शर्फुद्दीन बू अली कुछ समय बीतने पर तबरेज़ गए और लोगों से झूठों के मुहल्ले वाले संत शम्स का पूछा। लोगों ने बू अली को पागल समझा। वे परेशान और थके हुए बाहर के एक क़ब्रस्तान के पास से निकल रहे थे। तभी देखा कि शम्स तबरेज़ आराम से एक क़ब्र के ऊपर लेटे हुए हैं। मिलने पर कहा कि यही तो है झूठों की बस्ती। शर्फुद्दीन बू अली क़लंदर के फ़कीर 'क़लंदरिया' कहे जाते हैं। ये लोग रोज़ा व नमाज़ की पाबंदी नहीं रखते। सर पर ताज पहनते हैं और कफनी पहनते हैं या साथ में रखते हैं। मूँछे बढ़ाकर रखते हैं। मूछों के साथ कुछ संत दाढ़ी रखते हैं और कुछ नहीं रखते। ईश्वर की आराधना में मशगूल रहते हैं। अर्थात् एक प्रकार की निर्विकल्पक समाधि में बने रहते हैं ताल्लुक ख़ानवादा नहीं होते, दुनिया की परवाह नहीं करते। कुछ फकीर नग्न भी रहते हैं। आराम नहीं करते और ऊँचे स्वर से ईश स्मरण करते हैं। किसी से

कुछ नहीं मांगते। यदि भूखे हों और किसी ने खाने को कुछ दिया हो तो खा लेते हैं। तन्हा रहते हैं। इनकी दुवा में तासीर होती है, जो कहते हैं वह होता है।

सूफी फ़कीरों के और भी अनेक सिलसिले हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

'आज़ाद'-ये फ़कीर नियमों का कोई बंधन स्वीकार नहीं करते। कुछ कफनी पहने, नंगे सर घूमते हैं। कुछ भौहें भी मुड़ाते हैं और कुछ फ़कीर एक ओर की मूँछ मुड़ाते हैं तथा एक ओर की रखते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो आधा सिर मुड़ाए रहते हैं। ये फकीर प्रायः अपने हाथ में एक पंखा लिए रहते हैं। फ़कीर 'बेनवा'-गुदड़ी पहनते हैं, कानों में कुण्डल डाले रहते हैं और अपशब्दों का उच्चारण करते हुए मांगते हैं। आशकाना शेर पढ़ते हैं। कर्ण कुण्डल तस्वीह के दानों का होता है और उसे 'समरन' कहते हैं। सर पर ताज पहनते हैं, माथे पर सीधा काला टीका लगाते हैं। गदा नारायन को अपना मुर्शिद मानते हैं। आत्मा को ईश्वर (हक़ रूह), शरीर को पैगम्बर एवं हाथ-पावों को चार यार यानी ख़लीफ़ा कहते हैं।

फ़कीर 'काक़ाशाही' शेख़ इब्राहिम काका के अनुयायी हैं। ये हिन्दू व मुसलमान दोनों होते हैं। दोनों के बुज़ुर्गों को अच्छा या बुरा नहीं कहते, बल्कि, समान सम्मान देते हैं। भांग बहुत पीते हैं। 'जलालिया' फ़कीर जलाल बुख़ारी को अपना बुज़ुर्ग मानते हैं। रोज़ा-नमाज़ या इबादत नहीं करते। मुंशी करीम अली ने लिखा है कि 'जलालिया' फ़कीर सांप व बिच्छू जैसे जहरीले जानवरों को खा जाते हैं। इनका कामिल वह होता है जो पूरा सांप खा जावे। फ़कीर 'दाऊद पंथी' इन्हें कुछ लोग दादूपंथी भी कहते हैं। बादशाह अकबर के समय मारवाड़ के नरइना नामक कस्बे में दादू नद्दाफ़ नाम के एक संत हुए हैं। उनके अनुयायी ही दाऊद पंथी कहे जाते हैं। ये लोग बुतपरस्ती से दूर रहते हैं। माँस मछली नहीं खाते। परिवार को अपने साथ चाहें तो रख सकते हैं। मृतक का जनाजा जंगल में छिपाकर रख देते हैं, गाड़ते या जलाते नहीं है। सिलसिला फ़कीर 'प्यार पंथी' बाबा प्यार को अपना ख़लीफ़ा मानते हैं। ये फ़कीर कुछ बोलकर नहीं मांगते। घरों के सामने केवल खड़े हो जाते हैं। 'विश्नोई व गोसाई पंथी फ़कीर' हिन्दू व मुसलमान दोनों होते हैं। पूर्व की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं। खुदा, हिन्दू देवताओं व पीर पैगम्बरों को मानते हैं। मृतक को गाड़ते हैं। इसी प्रकार 'नानकपंथी' फ़कीर भी दोनों ही सम्प्रदायों के हिन्दू व मुसलमान होते हैं। समूह में रहकर डंडे बजा-बजाकर भीख मांगते हैं। 'मरचड़े फ़कीर' भीख मांगते हैं और यदि कोई नहीं देता तो उस्तरे से अपना सिर चीड़ते है। 'औघड़ फ़कीर' मालवा में इन्हें हुसेनी ब्राह्मण भी कहा जाता था। 'डफाली' फ़कीर भी होते हैं जो दफ और रबाना बजाकर भीख मांगते हैं। ये लोग गाज़ी मियां को अपना प्रमुख मानते हैं। उन्हीं के गीत गाते हैं और उन्हीं के नाम का झण्डा लगाते हैं। इनमें से कई समूह तो ऐसे हैं जो सूफियों की मूल साधना निरावृत्त रहस्य की खोज से कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

सूफी फकीरों का एक समुदाय 'जतीजोगियों' का है। इसमें हिन्दू व मुसलमान दोनों होते हैं। इनकी मान्यता है कि सब अली-औलिया संत गोरखनाथ के शागिर्द हैं। बाबा रैन हाजी

(गोरखनाथ) की दाया पैगम्बर मानते हैं। उन्हें ही वे हज़रत रिसालत पनाह को पालने वाला और राहत जोग नवी अलैहिस्सलाम का स्मरण कराने वाला मानते हैं। ये लोग रोज़ा नमाज़ के साथ-साथ पूजा पाठ भी करते हैं। 'हब्स दम' यानी हठ-योग इनकी साधना का मुख्य अंग है। ये संत किसी भी चीज को हराम नहीं मानते। धूनी लगाकर भी बैठते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि धार में इन संतों का विशेष सम्मान था। काल भैरव मंदिर के दक्षिण, रिमाउण्ड डेरी से पूर्व जमनजत्ती की टेकरी इनका पड़ाव रहा है। उस टेकरी पर इन्हीं जती संतों की दरगाहें हैं। ये लोग सम्भवत: यमन से आकर यहाँ रूके थे। मालवा और निमाड़ में नाथ सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार बहुत था।

अब्दुल्लाशाह चंगल, मौलवी कमालुद्दीन, मौलाना हिसामुद्दीन, सैयद मसूद मारूफ़ दाताबंदी छोड़, शेख़ ज़करिया मुरीद शेख़ अब्दुल रज़्ज़ाक, शेख़ इब्राहिम, शेख़ सईदुल्ला, शेख़ सदरजहाँ चिश्ती व शेख़ जौहर जैसे बहुत से वली अल्लाह धार में मदफून हैं। सैयद मसूद मारूफ दाताबंदी छोड़ को समरकंदी अब्दाल माना जाता है जो ईरानी फौज के साथ धार आए थे। आले रसूल हैं जो दुखियों को छुड़वाकर स्वयं शहीद हो गए थे। इनके सिर व धड़ को क्रमश: किले में व किले के बाहर नौगाँव में दफन किया गया। मौलाना अजीमुद्दीन गौस ने भी बल्ख से आकर 30 वर्षों तक धार में तपस्या की थी। इनकी मज़ार राजवाड़े के दक्षिण की ओर मुख्य सड़क पर है। मोहबुद्दीन कादरी और मौलाना ज़हरूद्दीन ग़ौस बसरा से आकर धार को अपनी तपस्थली बनाया। मोहबुद्दीन साहब की मज़ार झीरा में बनी हुई है।

हज़रत शेख़ सदर जहाँ इब्न अब्दुल फतेह का जन्म माणिकपुर के समीप एक गाँव में हुआ था। बाल्यकाल से ही ईश्वर भक्ति और यात्राओं के प्रति रूझान था। युवावस्था में ही घर द्वार छोड़कर ख़ान-इ-काबा में हाजिरी के लिए रवाना हुए। कुदरत को यह मंजूर न था। समुद्री तूफान और बीमारी के कारण अरब यात्रा स्थगित करके वे औलिया खेज सरज़मीन, सेर हासिल मुक़ाम धार आ गए। यहाँ पर उस युग के बरगुदीज़ा-बुज़ुर्ग शेख़ हज़रत ग़रीबुल्ला से बेत हुए। ग़रीबुल्ला धार में ख़ानक़ाह चलाते थे। कुछ समय बाद शेख़ ग़रीबुल्ला ने स्वयं हज यात्रा की तैयारी की और ख़ानक़ाह की व्यवस्था तथा अल्पव्यस्क पुत्र शेख़ ताजुद्दीन अताउल्ला की परवरिश का भार सदरजहाँ को सौंप दिया। शेख़ ग़रीबुल्ला की हज़ यात्रा अंतिम रही और मदीना में उनकी मृत्यु हो गई। धार नगर का वह सूफी संत मदीना मुनव्वरा में दफन है। अपनी यात्रा के दौरान शेख़ ग़रीबुल्ला ने मक्का से सदरजहाँ को एक पत्र लिखा था जिसमें कुछ हिदायतों के साथ सदरजहाँ को ख़िलाफ़त अता करने का उल्लेख था।

शेख़ ताजुद्दीन अताउल्ला के वयस्क हो जाने पर सदरजहाँ ने खानक़ाह की व्यवस्था उसे सौंप दी और बुरहानपुर चले गए। वहाँ मसीह-उल-औलिया शेख़ ईसा जुन्दुल्लाह से भेंट की। यहाँ रहकर उन्होंने मसीह-उल-औलिया से एक पुस्तक लिखने की प्रार्थना की। इन्हीं सदरजहाँ की प्रार्थना पर औलिया ने 'रिसाला-हवास-इ-पंजगाना' नामक ग्रंथ की रचना की। ख़लीफ़ा

सदरजहाँ को यह भी कहा गया कि वे धार नगर को ही अपना कार्यक्षेत्र मानें, कहीं बाहर न जाँय। हज़रत के कहने पर वे धार लौट आए, लेकिन, प्रतिवर्ष कुछ दिनों के लिए बुरहानपुर आने जाने का क्रम जारी रखा। माण्डू के विद्वान सूफी लेखक अल्लामा हसन ग़ौसी सत्तारी से इनकी मित्रता थी। ग़ौसी सत्तारी ने अपने ग्रंथ 'गुलज़ार-ए-अबरार' में धार के सदरजहाँ की मुलाक़ातों व दार्शनिक चर्चाओं का बड़े सम्मान के साथ उल्लेख किया।[5] यूँ धार नगर सूफी संतों व फकीरों की कर्मभूमि रही है।

सूफी विचारधारा और धार नगर

सूफी शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी लोगों ने अलग-अलग विचार व्यक्त किए हैं। कुछ लोगों का मत है कि 'सूफी' अरबी भाषा का शब्द है, और ऊन का बालदार मोटा कपड़ा पहनने वाला 'पश्मपोश' वह व्यक्ति जिसके पवित्र मन में केवल ईश्वर का ध्यान रहे 'सूफी' कहलाता है। दूसरा मत है कि सूफी शब्द ग्रीक भाषा के 'सोफिया' शब्द से निकला है जिसका अर्थ होता है-ज्ञानवान। संस्कृत भाषा का 'स्वभास' शब्द भी इसी अर्थ का द्योतक है। कुछ सूफी अपने सिद्धांतों का जन्म आदिकाल से मानकर स्वयं आदम को इसका प्रवर्तक मानते हैं। कुछ लोग हज़ूर पाक़ से और कुछ लोग हज़रत अली सा. से सूफी सिद्धांतों की उत्पत्ति बतलाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो 'सूफी' शब्द का प्रचार 8 वीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में हुआ, परन्तु सूफी सिद्धांतों में निहित भावना उतनी ही प्राचीन है-जितना कि विकसित मानव हृदय-क्योंकि, सूफी भावना भी मानव में सदैव से तरंगित रहस्य की जिज्ञासा का ही परिणाम है। सुप्रसिद्ध सूफी विचारक शेख़ अबुल हसन हुज्वरी (मृत्यु 1129 ईस्वी) के सुविख्यात ग्रंथ 'कश्फुल महजूब' (निरावृत्त रहस्य) की रचना के पश्चात् सूफी सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की शुरूआत हुई। शेख़ हुज्वरी सम्मान से 'दातावंज' कहे जाने लगे।

हज़रत दातावंज गज़नी के निवासी थे जिन्हें सूफी मत की शिक्षा बग़दाद से प्राप्त हुई थी। किसी कारणवश उन्हें बंदी बनाकर लाहौर लाया गया। अध्ययन और सत्संग के लिए आजन्म अविवाहित रहकर देशाटन किया। इन्होंने सूफी मत को इस्लाम धर्म के सच्चे रूप का प्रतीक माना है। इनके बाद हज़रत बाबा फ़ख़रूद्दीन, सैयद मुहम्मद बन्दा नवाज गेसूदराज आदि संतों ने शेख़ हुज्वरी के विचारों को और आगे बढ़ाया। धार के सूफी विचारक इन संतों को अपना आदर्श मानते रहे। उनके प्रतिपादित सिद्धान्त सभी के लिए स्वीकार्य रहे।

बग़दाद के बड़े पीर साहब ग़ौसुल आज़म हज़रत शेख अब्दुल क़ादिर जीलानी (1078-1166 ईस्वी) धार में भी सूफी संतों में ज्ञान, दया, वक्तृत्व शक्ति तथा सहनशक्ति के आदर्श रहे हैं। सामान्य जन की आज भी उनमें अटूट श्रद्धा विद्यमान हैं। ये महान विचारक यद्यपि धार नहीं आए, किन्तु उनके अनुयायी सैनिकों, व्यापारियों एवं यात्रियों के रूप में धार आते रहे।

सूफी विचारधारा प्राणिमात्र की एकता पर जोर देती है। इस विचारधारा में प्रेम ईश्वर प्राप्ति

का सरलतम मार्ग है। सूफी विचारक प्रेम के लिए संगीत को उत्प्रेरक शक्ति स्वीकार करते हैं। व्यक्ति को सरलतम, सादा और पवित्र जीवन व्यतीत करने पर जोर देते थे एवं समाज में ऊँच-नीच का भेद न मानते हुए बंधुत्व की भावना को महत्त्व देते थे। सूफी मत एकेश्वरवाद का पोषक है। ये लोग ईश्वर को प्रियतमा मानते हैं जिसकी प्राप्ति के लिए आत्मारूपी प्रियतम को समस्त सांसारिक सुख त्यागने पड़ते हैं। इनका विश्वास है कि ईश्वर एक अमर सौन्दर्य है।

ईश्वर प्राप्ति के लिए सूफी संत ज़िक्र (ईश्वर चर्चा) 'हाल' (दुनिया में रहकर भी दुनियादारी से दूर, निर्लिप्त रहना) 'तन सुख' (ईश्वर के साथ सामीप्य, एकत्व स्थापित करना) 'नक्स' (त्याग व निग्रह तथा आलोभ की प्रवृत्ति का विकास करना), 'तरीकत' (उस मार्ग पर चलना जो सांसारिक मोह माया और भ्रम तथा लोभ से साफ व प्रशस्त हो) एवं मारिफत-(ईश्वर की शिनाख्त, पहचान की अनुभूति करना) तथा 'हकीकत' (यानी निर्विकार, एक ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करना) को साधना का अंग मानते हैं।

सूफी विचारक मानते हैं कि हर मनुष्य में शारीरिक बौद्धिक और आत्मिक प्रवृत्तियाँ होती हैं। आत्मिक प्रवृत्ति के बिगड़ने से वह नीच एवं पतित हो जाता है। आत्मिक प्रवृत्ति के शुद्धिकरण के लिए सूफी विचारधारा में गुरू का विशेष महत्त्व है। सूफीमत में गुरू का दर्जा सर्वश्रेष्ठ होता है क्योंकि उसके बतलाए मार्ग पर चलने से ही ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है।

धार नगर में सूफी विचारधारा को चिन्तन का स्वरूप भी मिला। इस दृष्टि से इस नगर के सूफी संत हज़रत शेख़ सदरजहाँ का नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने इंसान के ज़ाहरी और बा़तमी हवासों पर गंभीर चिन्तन किया था। उन्होंने अपने चिन्तन को बुरहानपुर के सुप्रसिद्ध संत मसीह-उल-औलिया शेख़ ईसा जुन्दुल्लाह के समक्ष रखकर एक पुस्तक लिखने का निवेदन किया। मसीह उल औलिया ने 'रिसाला' 'हवास-इ-पंजगाना' नामक ग्रंथ लिखकर शेख सदरजहाँ के विचारों को स्थायित्व प्रदान किया। इस ग्रंथ में स्वाद लेने, सूँघने, स्पर्श करके अनुभव करने, सुनने, ज्ञान प्राप्त करने, विचार करने व स्मरण रखने जैसी शारीरिक शक्तियों की चर्चा है। ये शक्तियाँ ईश्वर प्राप्ति में किस प्रकार सहायक हो सकती है इसका वर्णन है। कहा जाता है कि एक सूफी साधक इन सारी शक्तियों को गुरू के बतलाए अनुसार परमशक्तिमान ईश्वर के तसव्वुर में लगाकर 'फना' (मोक्ष) की स्थिति प्राप्त कर सकता है।

सूफी मान्यता में हर मुरीद को शांति, ध्यान और पवित्रता का संकल्प लेकर उसे आचरण में उतारना आवश्यक है। इनका मत है कि संसार एक अंधकारपूर्ण दुर्गम बीहड़ वन है, जिसे पार करने के लिए पथ-प्रदर्शक गुरू की नितान्त आवश्यकता होती है। गुरू (मुर्शिद) अपने ज्ञान के प्रकाश से शिष्य (मुरीद) को मार्ग दिखलाता है। गुरू का हाथ मिल गया तो ही साधक अपने गंतव्य स्थल तक पहुँच सकता है, अन्यथा, सांसारिक प्रपंचों की भूलभुलैया में भटकता रहता है। इनके मतानुसार सद्‌गुरू का मिलना भी अत्यन्त कठिन होता है। सौभाग्यवश जिस व्यक्ति को सद्‌गुरू मिल जाता है वह पथ भ्रष्ट नहीं होता।

अपने पथ-प्रदर्शक गुरू के प्रति सूफी शिष्य को विनम्र होना चाहिए और अपने प्राण देकर भी गुरू के सुझाए मार्ग पर यदि चलना पड़े तो सदैव तैयार रहना चाहिए। गुरू की कृपा के अभाव में 'आबिद' (इबादत करने वाला उपासक) कर्मकाण्ड की कवायद से आगे यथार्थ की ओर नहीं बढ़ पाता। गुरूभक्ति, परिचर्या और सेवा सुश्रुषा से आशा का संचार हो जाता है, और 'सातिक' (सत्य की राह चलने वाला वह सूफी जो खुदा के नज़दीक भी हो) को यह विश्वास उत्पन्न हो जाता है कि वह जिस सन्मार्ग का पथिक है उसपर चलकर वह एक न एक दिन अपने अंतिम लक्ष्य-मोक्ष यानी ईश्वर मिलन को अवश्य ही प्राप्त कर लेगा। यदि मुरीद, मुरशिद के प्रति तनिक भी दुराग्रह या भेदभाव रखता है तो उसे अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती। शिष्य को निश्छल व नि:स्वार्थ भाव के साथ स्वयं को गुरू के चरणों में अर्पित कर देना चाहिए। सूफी सिद्धांतों में गुरू सब कुछ है, उसकी कृपा ही शिष्य की सिद्धि है। धार नगर में ऐसे सुयोग्य सूफी शिष्यों का कभी भी अभाव नहीं रहा है। अपने गुरू की आज्ञा शिरोधार्य करके मौलाना कमालुद्दीन और मौलाना गयासुद्दीन दिल्ली से धार चले आए थे। शेख़ सदरजहाँ अपने गुरू शेख़ गरीबुल्ला के हज पर चले जाने के बाद स्वयं हज पर नहीं गए। साथ ही मक्का से एक ख़त द्वारा शेख़ ग़रीबुल्ला ने उनके लिए जो हिदायतें लिख भेंजी उनका उन्होंने जीवन भर पालन किया। शेख़ के अवस्यक पुत्र की परवरिश की तथा धार को ही मक्का-मदीना समझकर बुज़ुर्गाने सल्फ की मज़ारात से रूहानी लज्ज़त व फैज़ हासिल करते रहे।

सूफीवाद में एकेश्वरवाद की परिकल्पना है। सूफी पूरे विश्व को ईश्वर की अनन्त सत्ता का परिणाम मानते हैं। इनके अनुसार ईश्वर और प्राणी दोनों एक है। जो कुछ है वह उसी का दिया हुआ है और सम्पूर्ण विश्व उसी के दिव्य प्रकाश से आलोकित है। ईश्वर ही सत्य है, विश्व का सार है। सूफीमत में 'एकत्व' का तात्पर्य दो पदार्थों-ईश्वर और जीव का मिलन नहीं, बल्कि, अद्वैत भावना से है। इसमें तू और मैं का अन्तर नहीं रहता। सूफी मत का सारा ढाँचा प्रेम की नींव पर खड़ा है। वे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सौन्दर्य को ईश्वरमय देखते हैं। उनका मत है कि ईश्वर स्वयं से प्रेम करता है। सारा विश्व इसी प्रेम का परिणाम और उसी के सौन्दर्य का साकार रूप है। सूफी सौन्दर्य की आराधना करता है, क्योंकि सौन्दर्य में ईश्वर का सत्य स्वरूप समाविष्ट है। इसीलिए सूफी साधक 'रति' के आलम्बन को ईश्वर मानते हैं। आस्था के अनुरूप चूँकि ईश्वर साकार नहीं है, अत: ध्यान के लिए साकार प्रियतम की कल्पना कर उसका विरह जगाते हैं। हिन्दुओं में भी सखी सम्प्रदाय इसी से मिलती-जुलती साधना का पोषक है।

सूफी विचारक ह्रदय को शीशे की भाँति मानते हैं जिसमें ईश्वर की प्रतिच्छाया दिखलाई देती है। लेकिन ह्रदय को सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त और पवित्र होना चाहिए। सूफी विचारधारा में कर्म की पवित्रता पर भी जोर दिया गया है। उनके अनुसार यदि कर्म अच्छे हैं तो मृत्यु मनुष्य को ईश्वर के समीप ले जायेगी। इसके विपरीत यदि कर्म बुरे हैं तो ईश्वर की प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती। स्वर्ग और नर्क ईश्वर की समीपता और दूरी के प्रतीक हैं।

'डिक्शनरी ऑफ इस्लाम' में सूफीवाद की प्रमुख बातें इस प्रकार लिखी गई हैं-

(1) अस्तित्व केवल परमात्मा का है, वह प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है और प्रत्येक वस्तु परमात्मा में समाहित है।

(2) चूँकि संसार की प्रत्येक वस्तु परमात्मा से निकली है, अत: परमात्मा रहित किसी वस्तु का अस्तित्व असम्भव है।

(3) सभी धर्म एक ही सत्य की ओर इंगित करते हैं।

(4) पुण्य और पाप की सृष्टि भी परमात्मा ने ही की है, अत: उनमें कोई भेद नहीं है।

(5) मनुष्य अपने कर्मों में स्वाधीन नहीं है, उसके संकल्पों और विनिश्चयों का कर्त्ता स्वयं परमात्मा है।

(6) आत्मा रूपी पक्षी शरीर रूपी पिंजड़े में कैद है, किन्तु, पिंजड़ा बाद में बना है, पक्षी पहले से मौजूद था। पिंजड़ा टूटे बिना पक्षी स्वाधीन नहीं हो सकता। अत: मृत्यु काम्य है, क्योंकि, तभी आत्मा को परमात्मा का सामीप्य सम्भव है।

(7) सूफी साधक ध्यान, समाधि, प्रार्थना और नाम स्मरण करके परमात्मा के सामीप्य की ओर अग्रसर होता है।

सूफी साधक समाधि की सुगमता के लिए संगीत को महत्त्व देते हैं, क्योंकि संगीत में मन को केन्द्रित करके ऊपर समाधि तक ले जाने की शक्ति निहित है। मनुष्य के सीमित गुणों को सूफी 'नासूत' यानी आलमें अजसाम (शरीअत एवं इबादते जाहरी) अर्थात् दुनियादारी से युक्त तथा परमात्मा की नि:सीमता को 'लाहूत' (आलमे जाते इलाही) यानी ईश्वर की पवित्र दुनिया कहते हैं।

सूफियों की एक विचारधारा वाले यह मानते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति प्रकाश से हुई है। दूसरा वर्ग है जो 'हुलूल' (अवतार) 'इम्तियाज' (अंशावतार) और 'नस्ख अरवाह' (आत्मा के आवागमन) पर विश्वास करता है। धार नगर में सूफी दर्शन, सिद्धान्त और सूफी-साधना की स्थिति क्या थी, यह बात अप्रत्यक्ष प्रमाणों से ज्ञात होती है। मुग़लकाल तक मालवा की हृदय स्थली धारा नगरी को-'मालवा का सैर हासिल मुकाम' (उर्वर स्थान) 'औलिया ख़ेज सर जमीन' (वह भूमि जहाँ पवित्र औलिया पैदा होते हों) तथा 'पीराने-धार' (यानी पीरों का नगर धार अथवा धार के पीर) कहा जाता रहा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ रहकर नियमपूर्वक साधना करने वाले साधकों के प्रति आम जनता में अटूट विश्वास और श्रद्धा थी। यहाँ के साधक सच्चे अर्थों में सूफी थे। यह तभी सम्भव था जब यहाँ के बड़े बुज़ुर्गों ने अपनी ख़ानक़ाहों में या नगर में सूफी साधना का एक ऐसा वातावरण बना रखा हो जो 'जबरूत' (खुदा के जलवे में एकाग्रता लाना, बुज़ुर्गी में वृद्धि) होकर लोकोपयोगी भी रहा हो। वस्तुत: धार नगर सूफियों में

अपनी इस विशेषता के लिए एक आदर्श स्थान रहा है। यहाँ का जन सामान्य भी एक 'फकीर' 'मिस्कीन' और 'दरवेश' के मरतबे के अन्तर को भली भाँति जानता था। शब्द कोशों से ज्ञात होता है कि 'फ़कीर' ऐसा साधक है जो अपने स्वयं अथवा परिवार के भोजन के लिए केवल एक दिन की सामग्री रखता हो 'मिस्कीन' वह साधक है जो एक दिन की सामग्री को भी संग्रह वृत्ति मानकर अपने पास नहीं रखता। 'दरवेश' शब्द फ़ारशी से आया है और मूलत: 'दरवेज' के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है, जिसका तात्पर्य है दरवाजे से चिपकना। जो मनुष्यों के दरवाजों से चिपका वह भिखमंगा और जो खुदा के दरवाजे से चिपका वह 'दरवेश' यानी 'फ़कीर कामिल' कहलाया।

मध्यकाल में अनेक स्थानों पर चलने वाली ख़ानक़ाहों की व्यवस्था भी गड़बड़ाने लगी थी। कुछ ख़ानक़ाहें सराय की भाँति उपयोग की जाती थी। सूफी संतों के साथ उनके कुछ अनुयायी भी उनमें रुक जाते थे। लेकिन धार नगर में ख़ानक़ाहों की पवित्र व्यवस्था बनी रही। 'दर्स-तदरीस' (पठन-पाठन) के कार्य सुयोग्य व्यक्तियों के पास रहे। जो सूफी उपसमुदाय ख़ानक़ाहों के नियम नहीं मानते थे, वे शहर में अलग स्थानों पर रुकते थे। जमनजत्ती संत समूह का नाथों के मठ के समीप पड़ाव डालना इसका एक उदाहरण है। इस प्रकार धार नगर में सूफी साधना अपनी पवित्रता को शताब्दियों तक बनाए रख सकी। यहाँ के संत शासक और शासित वे मध्य सेतु का काम करते रहे। कभी किसी से कुछ भी नहीं मांगा। पवित्र दरगाहों से चमत्कार के बजाय 'रूहानी लज्जत' मिलती रही।

धार में संत जमनजत्ती के परिचय के सम्बन्ध में भी दो मत हैं। हज़रत शेख़ जमालुद्दीन साहब को दाता जमनजत्ती कहा जाता है। कुछ लोगों का मत है कि जमनजत्ती के बड़ले में रुककर साधना करने के कारण हज़रत शेख़ जमालुद्दीन को संत 'जमनजत्ती' कहा जाने लगा था। शेख़ साहब सुप्रसिद्ध संत शेख़ बदीउद्दीन शाह मदार के ख़लीफ़ा हैं। शेख़ जमालुद्दीन एक विद्वान, त्यागी और हमेशा रोज़ा रखने वाले शरियत पाबंद बुजुर्ग रहे हैं। युवावस्था में इनका मुक़ाम सुरसपुर नामक एक स्थान रहा है। इनके शिष्य संत हज़रत करमुल्ला थे, वे भी 1543 ईस्वी के लगभग मालवा चले आए और माण्डू में अपना मुक़ाम किया। धार नगर मदारिया संत हज़रत शेख़ जमालुद्दीन के कारण भी पर्याप्त प्रसिद्ध हुआ। जमनजत्ती की पहाड़ी पर इनका सुप्रसिद्ध मकबरा है। वहाँ तथा आसपास और भी कुछ पुरानी मज़ारें विद्यमान है लेकिन उनके सम्बन्ध में कुछ भी संदर्भ उपलब्ध नहीं है। ऐसी मान्यता है कि धार ने ही 2 जिलहज 980 हिजरी के दिन (ईस्वी 1572) इस महान संत ने दुनिया से पर्दा कर लिया।

सूफी संत कभी भी अपना परिचय सर्वसाधारण को नहीं देते थे। अपना मर्तबा किसी को भी जाहिर नहीं करते थे। यही कारण है कि अधिकांश संतों के लिखित परिचय आज तक अधूरे हैं। संत ही संतों का परिचय जानते थे लेकिन वे भी इस राज को प्रकट नहीं करते थे। संतों को अतिशयोक्ति या प्रशंसा पसंद नहीं थी अत: उनके परिचय का शब्द जाल भी उपयुक्त प्रतीत नहीं

होता। 'गुलज़ारे-अबरार' के लेखक ग़ौसी शत्तारी ने इसीलिए अनेक बातें छोड़ दी हैं और समाज में प्रचलित चमत्कारिक बातों व भ्रांतियों को अपने ग्रंथ में कोई स्थान नहीं दिया। इस सुयोग्य लेखक की कर्मभूमि भी धार और माण्डू ही रही है।

मध्यकालीन धार की ऐतिहासिक व राजनैतिक पृष्ठभूमि

सूफी संतों का योगदान

धार नगर के इतिहास में ईस्वी सन् 1268-69 एक युगान्तरकारी तिथि रही है। इसी वर्ष यादव राजा महादेव ने धार पर आक्रमण करके यहाँ के शासक जयवर्मन द्वितीय को पराजित कर दिया। राजा का अवयस्क पुत्र अर्जुन वर्मन द्वितीय (भोज तृतीय) के नाम से शासक बना। राजा और मंत्री गोगा की वैमनस्यता ने गृह-युद्ध का रूप ले लिया जो 30 वर्षों तक चलता रहा। हम्मीर देव चौहान और शारंगदेव बघेला ने भी मालवा पर आक्रमण करके यहाँ के परमार वंश का पतन सुनिश्चित कर दिया। सूफी प्रचारकों और दिल्ली सुलतानों ने इसे एक सुअवसर समझा। निज़ामुद्दीन औलिया ने अपने मुरीद मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती तथा हज़रत मौलाना गयासुद्दीन चिश्ती को अपना ख़लीफ़ा बनाकर ईस्वी 1290-91 में ही धार भेज दिया। कुछ समय बाद ही मौलाना कमालुद्दीन के छोटे भाई हज़रत नूरूद्दीन उर्फ शाह आलम चिश्ती तथा शेख़ हज़रत मौलाना ग़यासुद्दीन के एक अन्य भाई शेख़ इब्राहिम भी धार आ गए। उधर दिल्ली से हज़रत औलिया ने मौलाना हिसामुद्दीन को भी इन संतों के पास धार भेज दिया। इन संतों ने धार नगर में रुककर अपनी योग्यता, तपस्या और जनसेवा से नगरवासियों का ही नहीं, आसपास की जनता का भी दिल जीत लिया और इस्लाम की स्थायी बुनियाद डाल दी। धार नगर सूफी गतिविधियों का केन्द्र बन गया।

ईस्वी सन् 1300 के लगभग धार का शासक अर्जुन वर्मन द्वितीय भी मर गया और महलक देव को राज सिंहासन प्रदान किया गया। इस समय मंत्री गोगा और राजा के सम्बन्धों में कुछ सुधार अवश्य हुआ। इन्हीं दिनों मालवा में किसी पूरनमल नामक व्यक्ति ने राजसत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली। सम्भव है गृह-कलह के कारण किसी सामन्त ने अवसर का लाभ लेकर अपने को उज्जैन के आस-पास के इलाके का शासक घोषित कर दिया रहा हो। इस पूरनमल ने सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने और दिल्ली सुल्तान की सहानुभूति प्राप्त करने के उद्देश्य से धार आकर मौलाना कमालुद्दीन से मिलकर इस्लाम स्वीकार कर लिया। पूरनमल की धर्मपरिवर्तन वाली कूटनीति के लाभकारी परिणाम नहीं निकले। दिल्ली सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाएँ मालवा पर भी अधिकार चाहती थी। मौलाना कमालुद्दीन के छोटे भाई हज़रत नूरूद्दीन उर्फ शाह आलम चिश्ती अलाउद्दीन के हिमायती थे। सुलतान अलाउद्दीन शेख़ नूरूद्दीन की रूहानी ताकत व करामात से बहुत प्रभावित था। धार में शेख़ की उपस्थिति इस दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। मालवा में शेख़ नूरूद्दीन का अनुभव सुलतान के लिए उपयोगी था।

योजना के अनुरूप 10 हज़ार घुड़सवार सैनिक आइनुलमुल्क मुलतानी के सेनापतित्त्व में सौंपकर अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा पर आक्रमण करवा दिया। परमारों ने 40 हज़ार घुड़सवारों और एक लाख की पैदल सेना के साथ आक्रमण का सामना किया। सेनापति गोगा मारा गया और राजा महलकदेव भागकर माण्डू चला गया। अमीर खुसरो ने लिखा है–'जहाँ तक नज़र जाती थी, खून गिरने के कारण जमीन कीचड़ बन चुकी थी।' सूफी संत अमीर खुसरो सेना के साथ मालवा आए थे या नहीं, यह पता नहीं चलता, लेकिन, अपने ग्रंथ 'ख़ज़ाइनुल फुतूह' में उपर्युक्त प्रकार का जो वर्णन लिखा है, वह आँखों देखा वर्णन प्रतीत होता है। आइनुलमुल्क ने महलक देव का पीछा किया, किन्तु माण्डू में प्रवेश न पा सका। कहते हैं कि इस अभियान में आइनुलमुल्क़ के साथ सूफी संत हजरत हसन सैय्यद भी सम्मिलित थे। ये हसन सैय्यद, हज़रत सैय्यद मीरा अली दातार के मामू थे। इन्होंने अपनी रूहानी ताक़त से पता लगाया कि माण्डू का किला हज़रत सैय्यद मीराअली के सहयोग से ही जीता जा सकता है। हज़रत को गुजरात के ऊँझा नामक स्थान से बुलवाया गया। उन्होंने अपनी रूहानी शक्ति से किले में प्रवेश का गुप्त मार्ग बतला दिया और दिल्ली की सेना ने किले में घुसकर विजयश्री प्राप्त कर ली। इतिहासकारों के अनुसार किसी व्यक्ति को लालच देकर किले का गुप्त मार्ग ज्ञात किया गया था। हज़रत हसन सैय्यद बाद में धार के निवासी बन गये, उनकी मज़ार धार के छोटे कब्रस्तान में नगर के पूर्वी छोर पर विद्यमान है।

माण्डू जीतने के बाद आइनुलमुल्क धार आ गया। यहाँ उसने परमार अधिकारियों को दिल्ली सुलतान की अधीनता स्वीकार करवाई। विजय की जानकारी और माले ग़नीमत में प्राप्त सम्पत्ति का विवरण तैयार करके मुख्य संदेश वाहक के साथ दिल्ली भेजा गया। दिल्ली में सात दिनों तक विजय-उत्सव मनाया गया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने विजयी सेनापति आइनुलमुल्क मुलतानी को मालवा का सुबेदार नियुक्त कर दिया।[6] यूँ ईस्वी 1306 के प्रारम्भिक महीनों में धार नगर को प्राप्त राजधानी का दर्जा समाप्त हो गया। पुराने राजवंश का अंत हो गया और यह नगर दिल्ली सुलतानों के अधीन एक 'इक्ता' बन कर रह गया। यहाँ सूफी संत तो थे मगर उनके लिए न मस्जिदें थीं और न मक़तब न ख़ानक़ाहें। नगर में इन सब की व्यवस्था की गई। प्रशासन की दृष्टि से देवगिरि का सूबा भी मालवा के साथ जोड़ दिया गया।

धार नगर दक्षिण जाने वाले सैनिकों के रुकने का एक मुख्य केन्द्र बन गया। शनिवार 6 सितम्बर 1320 ईस्वी के दिन अंतिम ख़िलजी सुलतान नासिरूद्दीन खुसरो शाह की दिल्ली में हत्या करके ग़ाजी मलिक ग़यासुद्दीन तुगलक शाह सुलतान बन गया।[7] कहा जाता है कि दिल्ली में निज़ामुद्दीन औलिया के प्रभाव के कारण ग़यासुद्दीन तुगलक शाह उनसे जलने लगा। तिरहुत विजय से लौटते समय सुलतान ने औलिया को संदेश भिजवाया कि सुलतान के दिल्ली पहुँचने से पहले वे नगर छोड़कर चले जाँय। औलिया के मित्रों ने नगर छोड़ देने की सलाह दी। इस पर औलिया ने कहा- 'हनूज दिल्ली दूअस्त' (अभी सुलतान के लिए दिल्ली दूर है) संयोगवश दिल्ली पहुँचने से पहिले एक सुनियोजित षड्यंत्र में सुलतान मारा गया और बुगरा खाँ मुहम्मद तुग़लक

के नाम से सुलतान बना। ईस्वी सन् 1325 में औलिया की भी मृत्यु हो गई। इधर धार में भी शेख़ नूरूद्दीन शाह आलम चिश्ती लगभग ईस्वी 1321 में और कुछ समय बाद हज़रत मौलाना ग़यासुद्दीन चिश्ती ने भी दुनिया से परदा कर लिया था। मान्यता है कि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन ने भी 1330 ईस्वी में आलमें ज़ाबदानी की तरफ कूच फरमाया। यूँ धार नगर में सूफी परम्परा की गौरवशाली पृष्ठभूमि तैयार हुई जो सदियों तक साधकों को आकृष्ट करती रही।

मुहम्मद तुग़लक ने आइनुलमुल्क को मालवा से बदलकर ईस्वी 1336-37 में अवध ज़ाफ़राबाद का सूबेदार बना दिया और अमरोहा में 'वली उलख़िराज' के पद पर काम करने वाले अज़ीज़ ख़म्मार को सूबेदार नियुक्त कर दिया। यह नियुक्ति ईस्वी 1345 से कुछ पहले की गई थीं। बीच में ईस्वी 1337 से 1345 तक दौलताबाद का सूबेदार कुतुलुग खाँ ही मालवा का प्रशासक रहा। [8] सुलतान कुतुलुग खाँ से नाराज था, अतः 1340 ई. में उसके स्थान पर आइनुलमुल्क को दौलताबाद आ जाने के लिए कहा। आइनुलमुल्क़ भी तैयार नहीं हुआ और सुलतान के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। इस उथल-पुथल का असर मालवा पर भी पड़ा और यहाँ के अमीरान-ई-सदह (वसूली अधिकारियों) की राजाज्ञा की अवहेलना करने लगे। सुलतान ने अज़ीज़ ख़म्मार को कठोरता करने का संकेत दिया और ख़म्मार ने अमीरान-इ-सदह को धार बुलवाकर मौत के घाट उतार दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पूरी सल्तनत के अमीर विरोध करने लगे। मालवा में अजराकता फैल गई। वैसे तो अज़ीज़ ख़म्मार की मालवा में नियुक्ति सुलतान की बहुत बड़ी भूल थी। फिर भी परिस्थितियों के आकलन के लिए सुलतान ने शाही कवि बद्रे चाच को धार भेजा। [9]

मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में 1335-36 ईस्वी में धार नगर पर भी अकाल का भयानक असर पड़ा और सारी प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। उस समय शेख़ इब्राहिम जैसे संतों ने जनता की बड़ी सेवा की। अक़ाल के कारण राजमार्गों पर हत्यायें और लूट पाट की घटनाएँ होने लगीं। सड़कें और गलियाँ सूनी हो गई, गाँव के गाँव खाली हो गए। [10] इधर मुहर्रम 751 हिजरी यानी 20 मार्च 1351 ईस्वी के दिन सुलतान मुहम्मद तुग़लक की जीवन ज्योति विलुप्त हो गई। फ़िरोज़शाह तुगलक दिल्ली सुलतान बना। ईस्वी 1352-53 में अज़ीज़ ख़म्मार के स्थान पर निजामुद्दीन को मालवा का सूबेदार बनाया गया। [11] मालवा की इन अशांत राजनीतिक परिस्थितियों में भी अनेक सूफी संत यहाँ आते रहे। शेख़ ज़ौहर अब्दुलहयी रह. जो हज़रत शेख़ बद्रउद्दीन सरहिन्दी रह. के शार्गिद थे, ख़रक़ा ख़िलाफ़त लेकर धार आए। इनकी मज़ार हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. के मकबरे के अहाते की चहारदीवारी के मध्य बनी हुई है।

धार नगर में भी सूफी विचारधारा दोहरे चिन्तन से प्रभावित हुई। एक वर्ग यह मानता था कि सृष्टि की उत्पत्ति प्रकाश से हुई है और दूसरे वर्ग की मान्यता थी कि 'हुलूल' (अर्थात् एक चीज का दूसरे में इस प्रकार मिल जाना कि पहचाना न जा सके), 'इन्तियाज' (यानी अंशावतार या अलग-अलग हो जाना) तथा 'नस्ख अरवाह' (यानी आत्मा के आवागमन) का भी अपना

महत्त्व है। समाज में 'औलिया' और 'उलेमा' का अन्तर पैदा हो चुका था। धार के हज़रत मौलाना हिसामुद्दीन ने एक नयी विचारधारा दी। उनकी मान्यता थी कि मुफलिसी या फाक़ाकशी करके ही 'फ़कीर हक़ीक़ी' नहीं बना जा सकता। एक बादशाह भी फ़कीर हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि इंसान के पास जो भी दौलत हो उसे अल्लाह के लिए वक़्फ़ कर दिया जाय। 'हुलूल, इम्तियाज और नस्ख अरवाह' के चिन्तन ने धार्मिक समन्वय की भावना को जन्म दिया।

हज़रत ख़्वाजा शम्सुद्दीन भी इन्हीं दिनों धार आए। वे हज़रत शेख़ नसीरूद्दीन चिराग़ देहलवी के मुरीद थे। धार में सर्वधर्म समन्वय का जो चिन्तन चल रहा था उसे इन्होंने भी आगे बढ़ाया। इनकी मज़ार भी मौलाना कमालुद्दीन रह. के मकबरे के अहाते में विद्यमान है। फ़िरोज़शाह के शासनकाल में हसन गोरी धार और माण्डू का चुंगी अधिकारी था। फ़िरोज़शाह ने उसे 'दिलावर खां' की उपाधि दी थी। 18 रमज़ान 790 हिजरी (रविवार 20 सितम्बर 1388 ईस्वी) के दिन फ़िरोज़शाह की मृत्यु हो गई और दिल्ली में उत्तराधिकार के झगड़े खड़े हो गए।

दिलावर खाँ ग़ोरी दिल्ली रहकर उत्तराधिकार के प्रश्न पर महमूदशाह का पक्ष लेता रहा। सुलतान बनने पर महमूद शाह ने ईस्वी 1390-91 में दिलावर खाँ ग़ोरी को मालवा का सूबेदार बना दिया।[12] दिलावर खाँ ने धार नगर को ही अपना मुख्यालय रखा। 8 रबी उल-अव्वल 801 हिजरी (7 दिसम्बर 1398 ईस्वी) के दिन दिल्ली में उस युग की भयानक घटना घटी।[13] तैमूर के सैनिकों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। तुगलक सुलतान हुदरानी दरवाज़े से भागकर पहले गुजरात और फिर धार आ गया। इस नगर में सुलतान को सम्मान के साथ शरण मिली। दिलावर खाँ की सुलतान के प्रति सहानुभूति उसके पुत्र अलफ खाँ को पसंद नहीं आई। पिता से रूष्ट होकर वह माण्डू चला गया और किले के अन्दर की सुरक्षा पंक्ति को सुदृढ़ करने में व्यस्त हो गया।[14] सुलतान महमूद सरदारों के आमंत्रण पर दिल्ली लौट गया। इधर दिलावर खाँ ने भी धार नगर में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। यूँ 1401 ईस्वी में यहाँ एक नए राजवंश की सत्ता प्रारम्भ हुई। राजधानी का दर्जा माण्डू को मिला। यूँ धार नगर के इतिहास का एक गौरवशाली युग समाप्त हो गया।

माण्डू सुलतान और सूफी संत

माण्डू के शासकों-ग़ोरी, ख़िलजी और पठानों ने सूफी संतों को बहुत आदर सम्मान दिया। गुजरात ही नहीं ख़ानदेश में बुरहानपुर और उसके आस-पास के इलाके भी सूफी संतों से परिपूर्ण रहे। धार और माण्डू के सूफी संत अपनी तपस्या, विद्वता तथा लोक हितकारी गतिविधियों के कारण भी सर्वत्र विख्यात हुए। इनके संक्षिप्त परिचय लिख पाना कठिन है। क्योंकि, अनेक संतों ने कभी किसी को अपना कोई परिचय बतलाया ही नहीं। जो भी संदर्भ उपलब्ध होते हैं उनके आधार पर माण्डू सुलतानों के समकालीन तथा बाद के कुछ संतों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

हज़रत शेख़ हुसेन

हज़रत शेख़ साहब मुलतान से अजमेर आकर तपस्या में तल्लीन हो गए और बारह वर्षों तक एक हुजरे में व्यतीत कर दिए। माण्डू सुलतान महमूद ख़िलजी ने चिश्तख़ान को अजमेर भेजकर शेख़ से माण्डू आने की प्रार्थना की। शेख़ ने प्रार्थना मान ली और माण्डू चले आए। यहाँ उन्होंने हिजरी 945 तक रहकर इबादत की। ईस्वी 1538 में इनकी मृत्यु हुई और कराड़िया गाँव में उन्हें दफ्न किया गया। कहते हैं मृत्यु के समय वे 129 वर्ष के थे। संत शाह ताजू मज्ज़ूब और उनके पुत्र क़ुतुबुद्दीन भिकारी के लिए इनके मन में बड़ा सम्मान था। उनकी मान्यता थी कि 'आज़ाद इंसान को प्यार से वश में किया जा सकता है। दरवेशों को बाज़ीगरी से परहेज़ रखना चाहिए।' शेख़ साहब बारहों महीने नमाज़ तहारत कुबरा के साथ पढ़ते रहे। इनके पुत्र शेख़ फ़ज़लुल्लाह मुलतानी का मज़ार नालछा में विद्यमान है। माण्डू में कई सुलतानों का राज्यकाल इन्होंने अपनी आँखों से देखा था।

हज़रत शेख़ सादुल्ला लारी 'शेख़ उल हदीस'

हज़रत शेख़ अब्दुल्ला लारी अपने युग के असामान्य विद्वान थे। वे अशरफ़ी महल माण्डू में संचालित दारूल उलूम (मदरसे) के 'शेख़-उल-हदीस' रहे। ज्ञान की दुनिया में उनका अपना विशेष महत्त्व था। इन्हीं के प्रयासों से माण्डू में एक आलीशान दारूल शिफां (अस्पताल) स्थापित हुआ और मौलाना फ़ज़लुल्लाह को 'हकीम-उल-हकीम' के पद से सम्मानित किया गया। वे संतों और उलमाओं के सेतु थे। अशिक्षा को ज़िन्दगी की कमी मानते थे। 11 जमादी उल आखिर 902 हिजरी (1496 ईस्वी) के दिन इनका विसाल हुआ। अशरफ़ी महल माण्डू में इनका मज़ार विद्यमान है। सुलतान महमूद खिलजी इनका मुरीद था। इस फाजिल उलमा में सूफी संतों के गुण विद्यमान थे।

हज़रत मखदूम क़ाज़ी बुरहानुद्दीन

हज़रत मख़दूम क़ाज़ी बुरहानुद्दीन रह. सुलतान होशंगशाह के शासनकाल में माण्डू आए थे। होशंगशाह उनका मुरीद हो गया। ऐसी मान्यता है कि होशंगशाह के मकबरे में इनकी मज़ार है क्योंकि पहले वह भूमि इन्होंने ही क्रय की थी। होशंगशाह की इच्छा थी कि उसे भी उसके मुर्शिद के समीप ही दफन किया जाय। अत: होशंगशाह को वहीं हज़रत मख़दूम रह. के आस्ताने दफन किया गया और शाही मकबरा बनवाया गया।

मख़दूम क़ाज़ी इसहाक रह.

हज़रत मख़दूम क़ाज़ी इसहाक रह. हक़ाइक़े रब्बानी के आलिम तथा पुराने ज़माने के पीरों के परिचय ज्ञान से पूर्ण थे। उन्हें कई बुजुर्गों का सान्निध्य मिला था। कइयों ने ख़िलाफ़त अता की थी और कइयों से बेत हो चुके थे। माण्डू सुलतान अलाउद्दीन महमूद खिलजी इनका मुरीद था। इनकी मान्यता थी कि 'खुदा के दोस्त (सूफी संत) हक़ीकी हयात से जिन्दगी पाए हुए हैं, उन्हें मृत्यु से किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती। उनके लिए मृत्यु एक यात्रा है जिसमें

पहला पड़ाव सूना हो जाता है, लेकिन आगे वाले पड़ाव में वे पूर्ववत् (ज़िस्लजिन्दों के) रहते हैं।' इनका मज़ार शरीफ भी अशरफ़ी महल में है।

मौलाना मोहम्मद अमीन रह.

मौलाना मोहम्मद अमीन तरीक़त के ज्ञाता थे। इन्होंने हदीस मिशक़ात अपने मुर्शिद शेख़ ज़ेनुद्दीन रब्बानी से पढ़ी थी। माण्डू में रहते हुए इनकी किताब मिशक़ात चोरी चली गई थी। बाद में रोम से किसी ने उसकी दूसरी प्रति इनके लिए माण्डू भिजवाई। वे एक सिद्ध पुरुष और धर्म-ग्रंथों के महान ज्ञाता थे।

हज़रत शेख़ मुहम्मद रह.

हज़रत शेख़ मुहम्मद हज़रत शेख़ इब्राहिम मुलतानी के पुत्र हैं। शेख़ इब्राहिम हज़रत शेख़ बहाउद्दीन मुलतानी के मुरीद व ख़लीफ़ा थे। शेख़ इब्राहिम ग़्यासुद्दीन खिलजी के शासनकाल में माण्डू आए। उस युग के वे सम्माननीय बुज़ुर्ग थे। माण्डू में कई वर्षों तक रहे और ख़ुदातलबी, हक़ परस्ती, फैज़ रसानी एवं रहनुमाई की अपनी मिशाल क़ायम की। यहाँ से शेख़ इब्राहिम बीदर चले गए। इनकी मज़ार दौलताबाद में है। इनके बाद माण्डू में इनके पुत्र शेख़ मुहम्मद जानशीन हुए। कुछ दिन बाद ये भी बीदर चले गए। माण्डू का यह संत अपनी बुज़ुर्गी और खुदाशनासी के लिए अत्याधिक सुप्रसिद्ध हुआ। इन्हें 'ज़माने का क़ुतुब' कहा जाता था। माण्डू को इनका जन्म स्थान होने का गौरव प्राप्त है।

हज़रत मौलाना इल्मुद्दीन शरफजहाँ क़ादरी

हज़रत मौलाना इल्मुद्दीन शरफजहाँ क़ादरी सुलतान ग़्यासुद्दीन ख़िलजी के राज्यकाल में माण्डू आए थे। ये रसमी उलूम के श्रेष्ठ ज्ञाता और कीमिया-सीमिया तथा दवाइयों के नुस्खों के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होंने माण्डू में 'दर्स' ज्ञान की नींव डाली। 'इल्मफनून' में बड़े माहिर थे। चेहल शरह का ख़ुलासा इन्हें मालूम था। कई वर्षों तक मक्का मदीना में रहकर मशाइख़ व हदीस का गम्भीर अध्ययन किया। सैयद बहाउद्दीन दक्खिनी से तरीक़त सीखी थी। ये मौलाना इल्मुद्दीन शर्फ जहाँ सैयद इब्राहिम एरजी क़ादरी के मुर्शिद थे। मआरफ़त और हक़ाइक़ के भी बहुत बड़े ज्ञाता संत थे।

शेख़ युसुफ ऐरजी 'मक़तूल-उल-इश्क़'

हज़रत ऐरजी के पूर्वज ख़्वारिज़्म से आकर एरिज में बस गए थे। इन्होंने ख़्वाजा इख़्तियारउद्दीन उमर से किताबी उलूम एवं कल्बी कमालात सीखा। इसके बाद इन्होंने सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी एवं शेख़ राजू क़त्ताल के पास रहकर ज्ञानर्जन किया। इन्होंने इमाम मोहम्मद गज़ाली के ग्रंथ 'मिनहाजुल आबदीन' को अनुदित किया। 'तारीख़-इ-मुहम्मदी' का लेखक मोहम्मद बिहमद ख़ानी इनका मुरीद था। उसने लिखा है कि 834 हिजरी (1430 ईस्वी) में एक रात शेख़ की ख़ानक़ाह में क़व्वाली की महफ़िल थी। अन्य सूफियों के साथ हज़रत भी शोरिश कर रहे थे कि एकाएक उनके प्राण पखेरू निकल गए। वहीं ख़ानक़ाह में उन्हें दफन कर दिया गया। बाद में

सुलतान महमूद खिलजी ने क़ब्र पर एक आलीशान गुम्बज बनवा दिया। हज़रत शेख़ युसुफ़ शायर मिज़ाज़ वाले विद्वान लेखक और विचारक थे। मुसलिम धर्मशास्त्र की हर विधा का उन्हें ज्ञान था। उन्हें 'जलील उल क़द्र आलिम' और 'क़ुतुब व रसाइल का मुसन्निफ बुज़ुर्ग' कहा जाता था।

हज़रत शेख़ुल इस्लाम चायलदा रह.

हज़रत शेख़ुल इस्लाम शाह राजू क़त्ताल रह. के ख़लीफ़ा हैं और ख़ानवादा सोहरवर्दियान से सम्बन्ध रखते हैं। हज़रत चायलदा की आराधना बीहड़ जंगलों में खुले आसमान के नीचे होती थी। आबादी और मकानों में बहुत कम रुकते थे। जंगल में खूँखार दरिंदे सलाम करने आते थे। हिजरी 810 (1407 ईस्वी) में जब दिलावर खाँ का पुत्र होशंगशाह माण्डू का सुलतान था, हज़रत चायलदा सफर हिजाज़ को जाते हुए यहाँ आए। महमूद ख़िलजी जो सुलतान बनना चाहता था, ने इनका स्वागत किया और आशीर्वाद प्राप्त किए। महमूद ने निवेदन किया कि हज से लौटकर वे माण्डू जरूर आवें। जब वे लौटे तब तक महमूद ख़िलजी सुलतान बन चुका था। सुलतान ने हज़रत चायलदा का बहुत स्वागत किया और अपना दामाद बना लिया। शाही महल रहने को मिला और अनेक क़ीमती वस्तुएँ उपहार में दीं। हज़रत चायलदा ने वे वस्तुएँ नगरवासियों को बाँट दी और स्वयं को इबादत में लगा लिया। इनकी ख़्वाबगाह अशरफ़ी महल माण्डू में है।

महमूद खिलज़ी इनका एक सुयोग्य मुरीद था। इनका पुत्र शेख़ बदहा भी एक अच्छा आलिम हुआ है।

हज़रत शाह नजमुद्दीन शाह क़लंदर रह.

हज़रत नजमुद्दीन शाह कलंदर हज़रत सैयद निज़ामुद्दीन इब्न सैयद मुबारक शाह गज़नवी रह. के पुत्र हैं। युवा होने पर खुदाशनासी के उद्देश्य से हज़रत निज़ामुल आरफाँ रह. की ख़िदमत में मुरीद हुए। पीर की आज्ञा से रोम गए और वहाँ पर हज़रत शेख़ ख़िज्र रोमी की ख़िदमत में रहे। शेख़ ख़िज्र रोमी रह. अपने जमाने के क़ुतुबुल औलिया बख़्तियार काकी रह. के ख़रक़ापोशों में से एक थे। वहीं रोम में रहते हुए हज़रत शाह नजमुद्दीन रह. क़लंदरी के सम्पर्क में आए और लम्बे समय तक रोम में घूम-घूम क़लंदरिया आराधना पद्धति का ज्ञान अर्जित किया। जब वे रोम से भारत आए तो माण्डू में रहते हुए एक अभूतपूर्व मानसिक शांति मिली। यहाँ के संतों और दरवेशों से बहुत प्यार मिला। राजवंश ने भी बड़ा सम्मान दिया। हज़रत शाह क़लंदर रह. ने देशाटन का विचार छोड़ दिया और नालछा में रहकर वैवाहिक जीवन व्यतीत करने लगे। लेकिन, सांसारिकता के बंधन उन्हें दार्शनिक चिन्तन से रोक नहीं सके। नालछा में जहाँ आपने मुक़ाम किया था उसके लिए कहा जाता है कि वह स्थान जन्नत का एक ऐसा बग़ीचा था जिसके नीचे धरती में अमृत की नहरे बहती थीं-'जन्नातुन तजरी मिन तहते हल अनहारो'। ईस्वी सन् 1448 (852 हिजरी) में ज़ुहुर की नमाज़ के समय हज़रत ने आलम रूहानी का अज़्म फरमाया

यानी दुनिया से परदा कर लिया। इनकी बड़ी-बड़ी करामातें आज भी विख्यात हैं।

नजमुल सादात हज़रत शाह नजमुद्दीन क़लंदर की कृपा से हज़रत शाह क़ुतुबुद्दीन बशीर जौनपुरी को क़ुत्बी दर्जा प्राप्त हुआ। ग़्यासुद्दीन ख़िलजी के राज्यकाल में हज़रत की मज़ार पर नालछा में एक आकर्षक मक़बरा निर्मित हुआ। इनके सिलसिले के संत जौनपुर, आज़मगढ़, इलाहाबाद, बीजापुर व काकोरी आदि स्थानों पर रहते आ रहे हैं।

हज़रत अज़ीजुल्ला अल मुतवक्कल अललल्लाह रह.

हज़रत अज़ीजुल्ला रह. शेख़ याह्या देहलवी इब्न शेख़ लतीफ रह. के पुत्र हैं, और फ़ारूकी ख़ानदान के वंशजों में से हैं। वे ख़्वाजा रुकनुद्दीन रह. के मुरीद और ख़लीफ़ा के रूप में कुछ दिनों तक अहमदाबाद में और कुछ दिनों तक दौलताबाद में रहे। इनके पाँच पुत्र और एक पुत्री थी। इनके पुत्र भी विद्वान संत रहे हैं। बुरहानपुर के संत शेख़ बहाउद्दीनशाह बाजन रह. इनके दूसरे पुत्र हज़रत रहमत उल्ला के मुरीदों में से एक हैं।

दौलताबाद से हज़रत अज़ीमुल्ला सुलतान महमूद खिलजी के राज्यकाल में माण्डू आए। इन्हें शाही सम्मान, स्वागत सत्कार और पुरस्कारों से कोई लगाव नहीं था। इन्हीं शर्तों पर वे माण्डू आए थे। सुलतान को केवल एक बार इन्होंने मिलने की अनुमति दी थी। माण्डू में इन्होंने अपना मुकाम किया, किन्तु परिवार को साथ न रखकर गुजरात भेज दिया। वे रंज व राहत में एक समान रहने की शक्ति रखते थे। उनका मत था कि 'अल्लाहताला ज़ाहिर और बातिन को जानने वाला है, अत: हर हाल में राज़ी बरजा रहो, किसी से न तो कुछ माँगो और न ही कोई शिकायत करो।'

इनका विसाल हिजरी 912 में (1506 ईस्वी) माण्डू में हुआ। उन्हें सागर तालाब के अतराफ में मदफ़ून किया गया। कालान्तर में इनकी मज़ार पर एक भव्य गुम्बज का निर्माण करवाया गया।

हज़रत क़ाज़ी अताउल्ला चिश्ती रह.

हज़रत क़ाज़ी अताउल्ला रह. दिल्ली के मूल निवासी थे और युग के आलिमों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। हज यात्रा से लौटकर जब वे गुजरात आए तब ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो चुका है। पुत्री आयु में बहुत छोटी थी। जब वह दस साल की हुई तब एक दिन स्वप्न में उन्हें बतलाया गया कि तुम्हारी पुत्री का निकाह माण्डू के शेख़ बहाउद्दीन सिद्दीक़ी से होना है। ये शेख़ बहाउद्दीन की तलाश में माण्डू आए। माण्डू में शेख़ के साथ पुत्री का निकाह हुआ और ये हज़रत भी यहीं रूक गए। यहीं उनका विसाल हुआ। शेख़ नजमुद्दीन इन्हीं शेख़ बहाउद्दीन के पुत्र और शाह मियां जी चिश्ती के प्रपौत्र हैं।

हज़रत शेख़ शाह ताहिर रह.

हज़रत शेख़ ताहिर बहुत बड़े विद्वान और राजनयिक थे। इनके प्रयासों से सुलतान

नासिरूद्दीन ख़िलज़ी, बुरहान निज़ामशाह और गुजरात सुलतान बहादुर शाह के मध्य संधि व समझौते हुए थे। इन्हें तसव्वुफ का बहुत इल्म था।

हज़रत शाह मियां जी चिश्ती रह.

हज़रत शाह मियाँ माण्डू में ही पैदा हुए थे, यहीं शिक्षा प्राप्त कर सम्माननीय स्थान प्राप्त किया और यहीं 918 हिजरी (1512 ईस्वी) में उनका विसाल हुआ। ये जो कुछ बोल देते थे, वह हो जाता था।

हज़रत शाह ताजू 'अजली मज़्ज़ूब' इब्न शेख़ कमाल रह.

हज़रत शाहताजू अरबी नस्ल के क़ुरेशी थे। इनका जन्म हिजरी 885 में (ईस्वी1480) में रणथम्भोर में हुआ था। पाँच वर्ष की उम्र में यतीम हो गए। इनकी दिवानगी को जन्म जात ला इलाज समझकर माँ ने भी इन्हें छोड़ दिया। उन्हीं दिनों शीशा फ़रोशों का एक काफ़िला माण्डू आ रहा था। शाह ताजू भी उन्हीं के साथ फटे हाल चले आए। यहाँ पर एक दिन वे 'अल्लामा मिन-अल दूना इल्मन' के मकतब में तक़दीर तख़्ती याद की और खुदाई इल्म तहरीर हो गया। सुलतान नासिरूद्दीन ने इनकी परवरिश का भार स्वयं ले लिया। बड़े होने पर सुलतान ने हरम सुलतानी में परदा नशीनों को सरई तालीम सिखलाने वाली वृद्ध महिला की हसीन जमील पुत्री राहतुल हयात के साथ इनका निकाह करवा दिया, और राज्य की ओर से रहने व खाने पीने की समुचित व्यवस्था करवा दी।

विवाह के कुछ समय पश्चात् इन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम क़ुतुबुद्दीन भाकरी रखा। कुछ समय पश्चात् बीवी राहतुल हयात की मृत्यु हो गई। पिताजी 'फनाफिल्ला की दरया में गर्क थे, और होश में आकर बेटे की परवरिश नहीं कर सकते थे।' लोगों की मदद से क़ुतुबुद्दीन भाकरी की परवरिश होने लगी। हिजरी 950 (1543 ईस्वी) में शाह ताजू ने दुनिया से परदा कर लिया। यह एक जन्मजात मज़्ज़ूब थे।

हज़रत सैयद निज़ाम इब्न सैयद शर्फ रह.

हज़रत सैयद निज़ाम रह. हज़रत सैयद शर्फ के पुत्र और सैयद ग़यास के प्रपौत्र थे। हज़रत सैयद ग़यास भी सुप्रसिद्ध सूफी संत हज़रत सैयद मोहम्मद गेसूदराज़ के पोतों में से एक थे। इनके पिता ग़्यासुद्दीन ख़िलजी के राज्यकाल में गुलबर्गा से माण्डू आए थे। पिता की मृत्यु के समय सैयद निज़ाम बहुत छोटे थे। बड़े होने पर ये हज़रत शेख़ बुरहान चिश्ती के मुरीद हो गए। जीवन यापन के लिए बेलदारी का काम करते थे। 'जिस्म को तपाकर रूह की परवरिश करना' इनकी साधना का अंग था। एक बार जब वे किसी के मकान में खुदाई कर रहे थे तब धन से भरा एक बर्तन इन्हें मिला। मकान मालिक को इन्होंने आवाज दी कि जो धन ज़मीन में दबा हुआ है ले जाइये ताकि खुदाई का काम चालू रखा जा सके। मकान मालिक ने कहा कि उसे प्राप्त करने का हक़ निकालने वाले को है। हज़रत बड़े बेचैन हो गए और बेलदारी का काम बंद कर घर चले आए। सोचा धन से मेरी साधना नष्ट होगी। बाद में इन्होंने आटा, दाल और ईंधन बेचकर रोज़ी

चलानी प्रारम्भ की।

जब हज़रत सैयद शग़ल करते थे तब उनके शरीर के अंग अलग-अलग हो जाते थे और बाद में एक हो जाते थे। गुजरात सुलतान बहादुर शाह ने जब माण्डू पर अधिकार किया तब इनसे भी मिलने आया था और बहुत सा धन देकर सम्मानित कर गया था। उस धन से हज़रत सैयद निज़ाम ने अपने पूर्वजों के मक़बरे बनवा दिए। इनके 24 बेटे थे जो अच्छे संत हुए। 19 जिलहिज 950 हिजरी (1543 ईस्वी) के दिन माण्डू में ही इनका विसाल हुआ। मज़ार सागर तालाब के समीप इनके पूर्वजों के मक़बरे के पास है।

हज़रत क़ाज़ी मीना रह.

लौकिक और अलौकिक ज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान हज़रत क़ाज़ी मीना हज़रत युसुफ़ के पुत्र थे। इनके पितामह हज़रत हमीद और प्रपितामह हज़रत अबुल मुफाखर माण्डू के निवासी थे, परन्तु भाइयों की वैमनस्यता के कारण हज़रत क़ाज़ी मीना माण्डू छोड़कर चंदेरी चले गए थे। राजपूतों द्वारा चंदेरी जीत लेने पर कुछ बुज़ुर्गों के साथ यह भी छतरा चले गए। माण्डू में उन दिनों मल्लू खाँ का शासन था। वजीर सैफख़ान ने क़ाज़ी मीना को माण्डू बुला जरूर लिया, परन्तु सुलतान से मिलने नहीं दिया। किसी अन्य वज़ीर ने यह जानकारी जब मल्लू खाँ को दी तो उसने हजरत को दरबार में बुलाकर सम्मानित किया और पूर्वजों द्वारा धारित क़ाज़ी का पद प्रदान किया। यहीं उनका विसाल हुआ।

हज़रत शेख़ प्यारा दानिशमंद रह.

हज़रत शेख़ प्यारा की जन्मभूमि लखनऊ है। इनके पिता हज़रत कबीर इब्न महमूद चिश्ती थे। शेख़ प्यारा शाह फ़ख़रूद्दीन इब्न हामिद चिश्ती के मुरीद हुए और सात बार हज की। सावतीं बार अपनी वृद्ध माँ को कंधे पर उठाकर मक्का मुअज़्ज़मा तक ले गए थे। वैसे इनके पीर ने इन्हें गुजरात में रूकने की इजाज़त दे दी थी, परन्तु माण्डू की ख्याति इन्हें मालवा खींच लाई। लगभग 50 वर्षों तक माण्डू में रहकर इन्होंने रस्मी उलूम की शिक्षा दी। लगभग 120 वर्ष तक स्वस्थ रहकर जीवित रहे। रमज़ान में हिजरी 963 (1555 ईस्वी) के दिन माण्डू में ही रेहलत फरमायी। इनका पुत्र शेख़ उस्मान भी इल्म कमालात का अच्छा जानकार था।

हज़रत पीर बाज़ूर मज्ज़ूब रह.

हज़रत पीर बाज़ूर एक सुप्रसिद्ध मज्ज़ूब थे और प्राय: दिगम्बर धूमा करते थे। जो कहते थे वह हो जाता था। माण्डू के शुमाली दरवाजे के पाए में इनकी ख़्वाबगाह है। जीवन काल में वे यहीं दालान में रहते थे। सुलतान बाज़ बहादुर इनसे बहुत प्रभावित था। इनके चमत्कारों की अनेक कहानियाँ आज तक प्रचलित हैं।

हज़रत शेख़ सुलेमान रह.

हज़रत शेख़ सुलेमान माण्डू की उन हस्तियों में से एक हैं जिनकी क़ौव्वाली की महफिलें

पूरे देश में चर्चा का विषय होती थीं। उन्हीं दिनों हज़रत शेख़ अमीनुद्दीन एक परहेज़गार आलिम हुए। वे संगीत को इस्लामी सिद्धांतों के खिलाफ मानते थे और चाहते थे कि किसी प्रकार शाही आज्ञा से सूफी महफिलों को प्रतिबंधित करवा दिया जावे। इसके लिए उन्होंने दिल्ली सुलतान सिकन्दर लोदी से मिलकर निवेदन किया। लोदी ने कहा कि 'आप स्वयं एक बार हज़रत शेख़ सुलेमान से माण्डू में जाकर मिल लें। अगर वे अपनी महफिलें बंद कर देते हैं तो दिल्ली में वे स्वत: बंद हो जायेंगी।' शेख़ अमीन माण्डू आए उस समय शेख़ सुलेमान की मजलिस चल रही थी। शेख़ अमीन उस मजलिस से बड़े प्रभावित हुए और शेख़ सुलेमान के मुरीद हो गए।

शेख़ सुलेमान से हज़रत शेख़ अमीन ने कहा कि किताबों में संगीत की मनाही है जब कि प्रयोग में संगीत ईश्वरीय साक्षात्कार कर सरलतम मार्ग है, अत: क्यों न क़ुतुबखाने को आग लगा दी जाय। मुरशिद ने फरमाया कि 'अलहक कि किताबें वल इस्लाम फिद दफातिर'-अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार तो ये पुस्तकें ही हैं, इस्लाम तो ऐसी पुस्तकों के भीतर का एक अध्याय है। हज़रत शेख़ सुलेमान के सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

माण्डू सुलतानों का राज्यकाल मालवा के इतिहास का एक गौरवशाली अध्याय माना जाता है। दिलावर खाँ ग़ोरी (1401-1406 ईस्वी) होशंगशाह (1406-1435 ईस्वी) तथा ग़जनी खाँ (1435-36 ईस्वी) ग़ोरी वंश से संबंधित सुलतान थे। इनके बाद मलिक मुग़ीस के पुत्र महमूद खिलजी (1436 से 1464 ईस्वी) के सुलतान बनने पर नए राजवंश की सत्ता स्थापित हुई। इसके बाद ग़्यासशाह (1469-1501 ईस्वी), नासिरशाह (1501 से 1510 ईस्वी) महमूद शाह द्वितीय (1511 से 1531 ईस्वी) माण्डू के शासक रहे। ईस्वी 1531 में गुजरात सुलतान बहादुर शाह ने मालवा पर अधिकार कर लिया। ईस्वी सन 1537 में बहादुर शाह के मरते ही मल्लू खाँ ने क़ादिर शाह के नाम से स्वयं को मालवा का स्वतंत्र सुलतान घोषित कर किया। दिल्ली में सत्ता पर शेरशाह सूरी का अधिकार होते ही मालवा भी उसके अधीन हो गया। माण्डू सुलतान क़ादिर शाह को शेरशाह ने बंगाल भेज दिया और 1542 ईस्वी में हाजी खाँ को माण्डू तथा जुनेद खाँ को धार का प्रशासक बना दिया। ईस्वी सन् 1542 से 1569 तक मालवा पर पठान सुलतानों का शासन रहा। बाज़ बहादुर इस वंश का प्रसिद्ध शासक हुआ, लेकिन उसी के राज्यकाल में (1562 ईस्वी में) मुग़ल सम्राट अकबर ने मालवा को जीतकर मुग़ल साम्राज्य का अंग बना लिया। यूँ धार नगर मुग़लों का एक कस्बा बन गया।

माण्डू सुलतानों के शासन काल में यानी 1401 से 1561 ईस्वी के मध्य धार और माण्डू सूफी संतों की गतिविधियों के मुख्य केन्द्र रहे। दिल्ली सुलतानों के समय यानी ईस्वी 1306 से 1400 तक धार नगर को प्रमुख स्थान मिला, लेकिन, माण्डू सुलतानों के समय धार नगर माण्डू का ही एक उपनगर बन गया। यहाँ अनेक संत आए। सुलतान गयासुद्दीन के शासनकाल में हज़रत सैयद अब्दुल्ला मूए मुबारक लेकर माण्डू आए। यह वही मूए मुबारक था जो आज हज़रत बल के रूप में कश्मीर में संरक्षित है। इसे देखने के लिए युगपुरूष सूफी संत हज़रत शेख़ हुसेन

नागोरी भी माण्डू आए थे। ख़दीजा बीवी जैसी महिला सूफी साधिकाएँ भी इसी पवित्र भूमि में जन्मी थीं।

शादियाबाद (आनंद नगरी) माण्डू यहाँ के संतों के कारण 'इबादत गाह' बन गया। धार नगर से साधना का जो प्रकाश फैला उसने युगों तक मालवा को रोशन किया। आज भी यह कथन सत्य प्रतीत हो रहा है कि-'अमीर मर गए फकीर ज़िन्दा हैं।'

धार और माण्डू के मुगल कालीन सूफी संत

12 मार्च 1561 के दिन अकबर की सेना मालवा विजय के लिए रवाना हुई। आधम खाँ और पीर मोहम्मद प्रारम्भिक अभियान के सेनापति बने। आधम खाँ को अकबर ने वापस बुला लिया और पीर मुहम्मद नर्मदा में डूबकर मर गया। अकबर ने अब्दुल्ला उजबेग को भेजा और 1562 ईस्वी में मालवा को जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया। बुरहानपुर अभियान में अकबर स्वयं सम्मिलित हुआ था और वहाँ के सूफी संतों से नाराज़ हो गया था। मसीह उल औलिया जुन्दुल्लाह सहित सैकड़ों संतों को बंदी बना लिया गया। इस घटना से यह सिद्ध हो गया कि उस युग में कुछ सूफी संत भी राजनीति में दखलंदाजी करने लगे थे।

दक्षिण अभियान में जाते समय 1598 ईस्वी में मुगल सम्राट अकबर सात दिनों तक धार में रूका रहा। जहाँगीर और शाहजहाँ तो धार और माण्डू के प्रशंसक रहे है। ईस्वी सन् 1658 में उत्तराधिकार युद्ध के समय धार नगर दारा शिकोह के अधिकार में चला गया था, किन्तु शीघ्र ही औरंगजेब ने उसे वापस जीत लिया। अकबर संतों को सम्मान अवश्य देता था, परन्तु राजसत्ता में उनका हस्तक्षेप उसे पसंद नहीं था। क़ादिरी संत हज़रत मख़दूम अब्दुल क़ादिर की जागीर इसीलिए समाप्त कर दी गई थी। दारा शिकोह स्वयं क़ादिरी संत हज़रत मुल्ला बदख्शी रह. का मुरीद था। उसने 'रिसाला हक़नुमा' और 'सफीनत औलिया' जैसे ग्रंथ लिखे थे। सम्राट शाहजहाँ 'साहिबे कुरान' कहे जाते थे। औरंगजेब स्वयं एक सूफी सम्राट था और अपने मुर्शिद हज़रत ख़्वाजा मुहम्मद माशूक नक्शबंदी को बहुत सम्मान देता था। इस युग में सत्ताधारियों का वर्चस्व स्थापित हुआ जो प्राय: राजधानियों में रहना पसंद करते रहे।

मुगल सम्राट औरंगजेब के अंतिम दिन कष्टपूर्ण बीते। उसकी दक्षिण नीति के कारण मुगल प्रशासन पंगु हो गया। मालवा में भी अशांति फैलती गई और जल्दी-जल्दी सूबेदारों में परिवर्तन होते गए। ईस्वी सन् 1698 से 1707 ईस्वी के मध्य मालवा की परिस्थितियों में विशेष परिवर्तन आया। ईस्वी 1698 में शहजादा बिदारबख्त का ससुर मुख्तियार खाँ मालवा का सूबेदार था। कृष्णा जी सावंत पूरे मालवा में लूटपाट करता रहा। सन् 1698 ईस्वी में शायस्ता खाँ के पुत्र अबू नसर को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया, किन्तु वह सफल प्रशासन देने में असफल रहा।[15] सम्राट ने रूष्ट होकर 3 अगस्त 1704 ईस्वी के दिन शहजादा बिदारबख्त को मालवा का सूबेदार बना दिया।

25 नवम्बर 1705 ईस्वी के दिन बिदारबख़्त का पिता शहजादा आज़म गुजरात से दिल्ली जाते समय धार रुका और पिता पुत्र की भेंट हुई। यह भेंट सम्राट औरंगजेब को अच्छी नहीं लगी और अप्रैल 1706 ईस्वी में उसने बिदारबख़्त को मालवा से गुजरात भेज दिया। नायब सूबेदार खान आलम को मालवा के सूबेदार का पद सम्हालने के निर्देश दे दिए गए।[16] इन्ही दिनों ईस्वी 1707 में सम्राट औरंगजेब की जीवन लीला समाप्त हो गई। मालवा में मराठों का प्रभाव बढ़ता गया। जब मराठों से त्रस्त होकर माण्डू का फौजदार भागकर धार आ गया तब इस कायरता के कारण उसे फौजदार के पद से हटा दिया गया।[17] बाद में निज़ाम ने भी यहाँ की सूबेदारी छोड़ दी। निज़ाम खानदान सोहरवर्दियों का मुरीद था। लेकिन यह युग एक ऐसा युग था, जब साधना के बजाय साधनों को महत्त्व मिला।

धार और माण्डू में मुगलों के समय जो सूफी संत और विचारक हुए हैं उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

हज़रत शेख इब्न क़ाज़ी सआदुल्ला सिद्दीकी रह.

हज़रत शेख़ के पूर्वज हज़रत शेख़ शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी की संतानों में से हैं। यह परिवार शेख़ निज़ाम नारनौली के ख़लीफ़ा के रूप में जौनपुर चला गया था। बाद में माण्डू सुलतान महमूद खिलजी प्रथम के राज्यकाल में (1436–1469 ईस्वी) हज़रत क़ाज़ी महमूद माण्डू आ गए। सुलतान महमूद खिलजी ने उन्हें कस्बा अमझेरा का क़ाज़ी नियुक्त करके ग्राम नागोद–बोधवाड़ा में 500 बीघे की एक जागीर दे दी। परिवार धार नगर का निवासी बन गया। हजरत महमूद के पुत्र शेख सआदुल्ला रह. ने दारूल हदीस अशरफी महल माण्डू में अरबी विद्वान हजरत अब्दुल रहमान अहवामी के सान्निध्य में रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त की। बाद में वहीं शेख़ुल हदीस के पद पर कार्य किया। अल्लामा मोहम्मद दाउद जैसे विद्वान इनके समय माण्डू में पैदा हुए।

पिता की मृत्यु के समय हज़रत शेख़ अवयस्क थे। इनका जन्म धार में हुआ था। जब बड़े हुए तो शेख़ निज़ाम नारनौली के ज्ञान की चर्चाएँ सुनी। वहाँ गए और मुरीद बने। वहीं हज़रत शेख़ अब्दुल्ला के भी सम्पर्क में आए। कुछ समय बाद वापस धार आ गए। धार में रोज़ा नमाज़ तथा परहेज़ से शरीर को तपाया और रूह की तरक्की की। हिजरी 996 (1587 ईस्वी) में इनकी मुलाकात नवाब खान आज़म मिर्ज़ा से उज्जैन में हुई। इनकी इच्छा हज पर जाने की थी, अत: जब तक खर्च की व्यवस्था नहीं हो गई। इन्होंने अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर रखा ताकि ख़ाना–ए–काबा के सिवा और कुछ न देखें।

हज पर जाते समय इन्होंने एक हुजरा बनवाकर ऊँट पर रखवाया और उसमें उल्टे लटककर यात्रा पूरी की। वहीं मदीना शरीफ में 3 रबी उल अव्वल के दिन हिजरी 998 में (ईस्वी 1589) इनका विसाल हुआ। इनकी कब्र वहीं पर है।

हज़रत शेख़ सद्रजहाँ इब्न अबू फतेह रह.

हज़रत शेख़ सद्रजहाँ का कुछ परिचय पूर्वपृष्ठों में धार नगर की सूफी पृष्ठभूमि के साथ दिया जा चुका है। वस्तुत: वे एक ऐसे परिव्राजक (भ्रमणशील) संत थे जिन्हें मालवा की धरती से प्यार था। इनका जन्म मवाल नामक कस्बे में हुआ था। कहा जाता है कि वे 'हमेशा ही हंगामें में गोशागशीन और सैर व सियाहत में चिल्लानशीन रहे।' जीवन को वे एक अमानत मानते रहे। इच्छाओं पर नियंत्रण किया, जो मिला उसे दूसरों को खिलाने के बाद खाया। शेख़ गरीबुल्ला से वे अत्यधिक प्रभावित थे। दरवेशी और बेनवाई उन्हीं से सीखी। गरीबुल्ला रह. जब हज पर चले गए तब जो उत्तरदायित्व उन्होंने शेख़ सद्र को सौंपा उसे उन्होंने पूरा किया। धार में वे हज़रत शरबती बाबा के नाम से भी प्रसिद्ध रहे। 17 रबी उल अव्वल के दिन 1014 हिजरी (1605 ईस्वी) में इन्होंने मृत्यु का वरण किया। इनका मज़ार इस्लामपुरा धार में बना हुआ है।

हज़रत शेख़ मआरूफ़ गरीबुल्ला रह.

इनका परिचय भी पूर्व पृष्ठों में आ चुका है। वे धार के उन संतों में से एक हैं जिनको विसाल का सौभाग्य मक्का मुनव्वरा में मिला है। 'गुलज़ारे अबरार' में बैतूल हरम से लिखे गए उनके पत्र का उद्धरण इस प्रकार दिया गया है–

'मोहिब्बे जान यार दो जहानी बिलसिकदक व अलई कां शेख सद्रजहाँ' मआरुफ गरीब उल्ला की तरफ से आरेफाना दुआ और सलाम कुबूल फरमाकर खुदा करे हमेशा खैर के साथ मअउल इश्क बल इरफ़ान रहे वल्ला सुमबिल्ला एकदम और एक कदम भी आपके बगैर नहीं गुजरता है। अगरचा बज़ाहिर मसाहबत और कुर्बत से जुदायी है, लेकिन माअन हमेशा इस तरीक उज़्मा में रफाकत बुनी हुई है। मदुआ–ऐ–जरूरी यह है कि फरजंद अरजमंद शेख़ ताजुद्दीन अताउल्ला (ब मशहूर बुगड़े पीर) को मैंने आपकी सुपुर्दगी में दिया है और आपको अपनी जगाह छोड़ आया हूँ। जो शख्स मेरी तरफ इरादत लेकर आवे उसकी बेअत और हक़ सुब्हाना तआला की रहनुमायी करना और बा बशारत ख़िलाफ़त नामा आली अकाल उल बैतूल हरम से रवाना किया गया है। मशाईख रेहमउल्ला ताला के तरीक में साबित कदम रहना। इस हज और उमरे का सवाब आपको उस मिकदार से ज़्यादा नसीब होगा के जिस कद्र हमाराहियों ने पाया है। वस्सलाम।

यह धार नगर का गौरव है कि यहाँ के दो–दो संतों की खाक पाक मदीना मुनव्वरा में मदफून है।

हज़रत ज़िन्दा हाजी मज्ज़ूब इब्न रामराजा

हज़रत ज़िन्दा हाजी बिजैनगर के शासक रामराजा के पुत्र हैं। अहमद नगर के शासक हुसेन निज़ामुलमुल्क के आक्रमण के समय रामराजा मारा गया और उनका एक पुत्र जो बहुत कम उम्र का था उसे बंदी बना लिया गया। वही बंदी राजकुमार कालान्तर में ज़िन्दा हाजी नाम से विख्यात हुआ। प्रारम्भ में जीवन यापन कुछ घरों से मिलने वाली सहायता से होता रहा। युवा होने

पर सेना में काम किया, किन्तु शांति नहीं मिली। भागकर धार चले आए और सुप्रसिद्ध विद्वान हज़रत शेख़ मारुफ़ सआदुल्ला चिश्ती रह. के मुरीद हो गए। जब मुर्शिद 1588-89 ईस्वी में हज यात्रा पर चले गये तब उनकी अनुमति से इन्होंने 'गुलज़ारे अबरार' के लेखक गौसी शत्तारी के साथ भारत भ्रमण का काम किया। हज़रत ज़िन्दा हाजी अपनी प्रशंसा से बहुत दूर रहते थे। उनका मत था कि परिचय लिखे जाने के कारण कोई महान नहीं हो जाता। ये हज़रत एक अच्छे सय्याह थे।

हज़रत शेख़ ताजुद्दीन अताउल्ला 'बुगड़े पीर' रह.

हज़रत शेख ताजुद्दीन को शान और तरीकत तो वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए थे। विवेक और संयम उन्होंने शेख सद्रजहाँ से सीखा। अपने पिता गरीबुल्ला के ये एक सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। इनका जन्म धार में ही हिजरी 986 (ईस्वी 1578) में हुआ था, केवल 12 वर्ष की उम्र थी कि पिता का स्वर्गवास हो गया। शेख़ सद्रजहाँ चिश्ती जो इनके संरक्षक थे उन्होंने इनकी तालीम व तदरीस की समुचित व्यवस्था की। इन्हें 'दानिश, पाकीज़ा, अख़लाक, जोहद तकबा किरदार आला और साहिबे-उलूम बुज़ुर्ग' कहा जाता है। अपने युग के श्रेष्ठ ज्ञानवान विचारक थे। धार में ही हिजरी 1075 में (ईस्वी 1664) इनका विसाल हुआ। धार के इस्लामपुरा मुहल्ले में सूखे तालाब की पाल पर इनका मज़ार बना हुआ है। मज़ार पर मुगल स्थापत्य कला का एक गुम्बज है। ईसार और खुदरफ्तगी और खैर फरामोश का शेबा इनकी विशेषता थी। ये बातें उन्होंने अपने पीर मुर्शिद हज़रत शेख़ सद्रजहाँ चिश्ती से सीखी थीं।

हज़रत रहनुमाए उलूम सैयद मसूद 'दाताबंदी छोड़' रह.

हज़रत दाताबंदी छोड़ रह. के परिचय के सम्बन्ध में भी मतभेद है। गुलज़ारे अबरार के लेखक गौसी शत्तारी ने इनके सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। एक कथानक है कि किसी राजा ने अनेक नव विवाहित दम्पत्तियों को धार किले में बंदी बना रखा था जिन्हें हज़रत ने मुक्त करवाया। लेकिन, ऐसी किसी घटना के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। जो भी परिचय मिलता है वह सैयद अब्दुल हयी कृत 'यादे अय्याम' से मिलता है जो बहुत बाद के समय की रचना है। कुछ विद्वान दाताबंदी छोड़ को मुगलकालीन मानते हैं, लेकिन 'यादे अय्याम' में उन्हें उत्तर सल्तनत कालीन शक्तिशाली अमीर मेदिनी राय का समकालीन यानी 1518 ईस्वी के लगभग का माना गया है। 'यादे अय्याम' के अनुसार दाताबंदी छोड़ समरकंदी अब्दाल हैं। वे सैयद वंशीय हैं और सत्ताईस पीढ़ियों पूर्व उनका सिलसिला हज़रत अली से जुड़ा हुआ माना गया है। इनके पिता का नाम हजरत सैयद मकबूल रह. और माता का नाम सैयद हमीदा बानो था। इनका जन्म समरकंद में हुआ था, लेकिन, बचपन में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई। इकलौते पुत्र 'मकबूल जादा' को लेकर वालिदा मुकर्रमा अपने भाई के पास जयपुर आ गई। जयपुर तक की यात्रा इन्होंने भटिण्डा, सरहिन्द और दिल्ली होते हुए तय की थी। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि सैयद अब्दुल हयी साहब ने 'यादे अय्याम' में हज़रत का परिचय लिखते समय यह ध्यान नहीं रखा कि जयपुर नगर की स्थापना बहुत बाद में हुई थी। [18]

जयपुर में अपने मामू हज़रत मौलाना सैयद ज़ियाउद्दीन रह. के पास कुछ समय रूकने के बाद हज़रत सैयद मासूद अजमेर आ गए। उस समय इनकी आयु 14-15 वर्ष की थी। अजमेर में कुछ दिनों तक रोज़-ए-मुबारक में हाजिरी देने के बाद उज्जैन होते हुए माण्डू आ गए। यहाँ उन्होंने जाहिरी व बातनी इल्म प्राप्त किया तथा हज़रत सैयद महमूद अब्दाल रह. के मुरीद बन गए। वयस्क होने पर सिपाही बन गए और तरक्की मिलने पर जमादार की हैसियत से धार दुर्ग में पदस्थ हुए। महमूद शाह खिलजी द्वितीय के शासनकाल में मेदिनी राय का वर्चस्व बढ़ गया और एक प्रकार से वही राज्य का कर्त्ता-धर्ता बन गया। कहते हैं कि इसी दौर में मेदिनी राय ने हिजरी 917 में (ईस्वी 1511 में) अनेक लोगों को बंदी बनाकर सपरिवार धार किले में कैद करवा दिया। जो तिथि 917 हिजरी बतलाई गई है वह वास्तव में महमूद खिलजी द्वितीय की ताजपोशी की है और सुलतान नासिरशाह की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों के बीच चल रहे संघर्ष काल से संबंधित है। मेदिनीराय उस समय तक अपना वर्चस्व स्थापित नहीं कर सका था। [19]

'यादे अय्याम' के वर्णन के अनुसार जुमेरात 7 मोहर्रम हिजरी 918 के दिन (25 मार्च 1512 ईस्वी) हज़रत मसूद ने बंदीघर के दरवाजे खोलकर सारे कैदियों को मुक्त कर दिया। मान्यता है कि इसके लिए उनकी वालिदा ने अपनी सहमति दी थी। कुछ सैनिकों ने हज़रत का विरोध किया और आपसी झड़प हो गई। इनके कुछ साथी मारे गए। किले के अन्दर ही इनका सर मुबारक भी तनपाक से जुदा हो गया। फिर भी घोड़े पर सवार इन्होंने किले के बाहर तक विरोधियों का मुकाबला किया। मज़लूम सआदतमंद कैदियों की रिहाई की खातिर हज़रत सैयद मासूद राहे हक़ में शहीद हो गए। यही पीराने शहीदा 'दाताबंदी छोड़' के नाम से विख्यात हुए। इनका सिर किले के अन्दर दफ्न किया गया और मुख्य मज़ार किले के उत्तरी छोर पर बाहर नौगाँव की ओर बनाया गया। समरकंदी अब्दाल के रूप में विख्यात हैं।

हज़रत शेख़ जमालुद्दीन 'जमनजत्ती' रह.

हज़रत जमनजत्ती रह. का परिचय भी ऊपर धार नगर में सूफी परम्परा की पृष्ठभूमि के साथ दिया जा चुका है। ये मदारिया सिलसिले के संत है और शेख बदीउद्दीन शाह मदार रह. से बेऊत होकर खरकए ख़िलाफ़त प्राप्त की थी। 10 जमादी उल अव्वल 940 हिजरी में इनके मुर्शिद ने दुनिया से पर्दा कर लिया। हज़रत शेख़ जमालुद्दीन कुछ समय तक हज़रत शेख़ महमूद राजन रह. के पास रहकर तरीकत का इल्म हासिल किया। इन्हें तर्क तजरीद के साथ जीवन यापन करना पसंद था। वे एक अच्छे हाफ़िज़ थे और पाक कुरान पढ़ने का बड़ा शौक था। हमेशा रोज़ा रखते थे, जौद तकबा व शरियत के पाबंद बुज़ुर्गों में इन्हें सम्मान प्राप्त था।

धार में रहते हुए 2 जिलहज 980 हिजरी (1572 ईस्वी) में हज़रत की वफात हुई। इनका मज़ार रतनागरा के समीप एक पहाड़ी पर स्थित है। वफात से पूर्व लम्बे समय तक कस्बा सुइसपुर हज़रत का निवास स्थान रहा है। वहीं पर एक वैश्य पुत्र को इन्होंने अपना वारिस नियुक्त किया, जो हज़रत करमुल्ला रह. के नाम से विख्यात हुआ।

हज़रत शेख़ ज़करिया क़ादरी रह.

हज़रत शेख़ ज़करिया क़ादरिया सिलसिले के संत है। अपने मुर्शिद हज़रत शेख़ अब्दुल रज़्ज़ाक जनजहानवी से आज्ञा लेकर हिजरी 984 (1576 ईस्वी) में दिल्ली से मालवा आए। धार में हज़रत शेख़ सादुल्ला और सद्रजहाँ चिश्ती जैसे विद्वानों से प्रभावित होकर यहीं रूक गए। ये आजन्म अविवाहित रहे और यहीं धार में रहते हुए 988 हिजरी (1580 ईस्वी) में बहिश्त नशीनों के हमनशीन हुए। इनका मज़ार मौलाना गयासुद्दीन चिश्ती की मजार के पास मकबरा अरीठापीर में स्थित है।

हज़रत अब्दुल्ला बियाबानी रह.

इल्म मआरफ़त के श्रेष्ठ ज्ञाता हज़रत अब्दुल्ला बियाबानी हज़रत शेख़ समाउद्दीन देहलवी के पुत्र हैं। हज़रत क़ाज़ी शेख़ समाउद्दीन जुबदतुल सादात थे और फतवानवीसी का मंसब प्राप्त था। उन्हें 'कुतलुग खानी' की उपाधि भी मिली हुई थी। हज़रत बियाबानी आबादी से दूर बियाबान स्थानों पर रहकर 'वली अजलत' जैसी तपस्या किया करते थे। प्रतिदिन एक बार पूरा कुरान शरीफ जो याद था पढ़ा करते थे। भूख लगने पर वन-धान्य या जंगली फल खा लेते थे। हर मौसम खुले आसमान के नीचे रहकर बिताते थे। प्रतिदिन जंगली जानवर उन्हें सलाम करने आते थे। माण्डू सुलतानों के समय हज़रत यहाँ आए और किले से नीचे घाटियों में रहकर साधना की। इनकी मज़ार गाँव काली बावड़ी के समीप स्थित है।

हज़रत बियाबानी को कोई संतान न थी। हजरत शेख हुसेन नामक इनके एक चचेरे भाई थे जो गौसी सत्तारी के मित्र थे। हिजरी सन् 1007 में (1598 ईस्वी) इनका भी स्वर्गवास हो गया। उनके एक लड़का था जो घोडनशाह के नाम से जाना जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि हज़रत बियाबानी माण्डू सुलतानों के बाद भी लम्बे समय तक जीवित रहे थे।

हज़रत शेख़ महमूद चिश्ती रणथम्बोरी रह.

हज़रत शेख़ महमूद चिश्ती सुलतान क़ादिरशाह के राज्यकाल में (1537 से 42 ईस्वी) माण्डू आए। ये एक सुयोग्य हाफ़िज़ थे और लोगों के अन्तरमन की बातें अपनी आत्मशक्ति से जान लेते थे। इनके पिता शेख़ुल हदाद चिश्ती के ख़लीफ़ा थे। कुछ दिनों तक माण्डू में रुकने के बाद इन्होंने नर्मदा किनारे कुब्जा संगम के समीप खुजावा गाँव को अपना आवास बनाया। वहीं पर हिजरी 960 में (ईस्वी 1552) में इनकी वफात हुई। पुत्र हजरत शेख मियाँ इनके सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। उनका विसाल भी हिजरी 985 में (ईस्वी 1577) उसी गाँव खुजावा में हुआ। पिता पुत्र की मजारे वहीं खुजावा में विद्यमान हैं।

हज़रत शेख़ कमालुद्दीन इब्न सुलेमान कुरेशी रह.

हज़रत शेख़ कमालुद्दीन का जन्म कालपी में हुआ था। त्याग, अपरिग्रह और अनुशासन इनकी दिनचर्या में सम्मिलित था। इन्होंने शाह अरगोन मदारी को अपना मुर्शिद बनाया, लेकिन अस्माए-इलाही और अजकार की अनुमति उन्हें हज़रत शेख़ रुकनुद्दीन के ख़लीफ़ा और शेख़

अबुल फतह हिदायतुल्ला के साहबजादे से प्राप्त हुई थी। सुलतान बाज़बहादुर के शासन काल में 1556 से 1561 ईस्वी के मध्य हज़रत कुरेशी माण्डू आ गए थे। गौसी सत्तारी को कुरान पढ़ाने का काम इन्होंने ही पूरा किया था। लगभग 100 वर्षों तक जीवित रहे, लेकिन किसी को भी अपना राज व न्याज़ व्यक्त नहीं किया। हिजरी 973 में (1565 ईस्वी) इनकी वफात हुई। गौसी सत्तारी के वालिद के पास माण्डू में मदफून हुए। जीवन भर एक निस्पृह संत की भाँति रहे।

शेख़ फजलुल्लाह बिन शेख हुसेन चिश्ती रह.

हजरत शेख फजलुल्लाह एक दानशील उदार और परोपकारी स्वभाव के संत थे। संसार और संसार से परे विषयों का सम्यक् ज्ञान था। हिजरी 945 (1538 ईस्वी) में पिता की मृत्यु के बाद 946 हिजरी (1539 ईस्वी) में हज यात्रा पर चले गए। हिजरी 950 (1543 ईस्वी) में वापस आ गए। यहीं माण्डू में रहकर लगभग 20 वर्षों तक अपने पूर्वजों के बताए हुये सद्मार्ग पर चलकर आत्मोन्नति और पवित्रता प्राप्त की। हिजरी 972 (सन् 1564 ईस्वी) में मृत्यु के बाद इन्हें नालछा में दफ़्न किया गया।

हज़रत शेख़ जाइरूल्ला बिन शेख़ उमर रह.

कालीन बनाना इनका खानदानी पेशा था और इनके पूर्वज, माण्डू में रहकर कालीन बनाने का कार्य करते थे। किन्तु हज़रत शेख़ उमर ने दरवेशी का मार्ग अपनाया। हज़रत शेख़ जइरूल्ला को बाल्यकाल से साधना के प्रति लगाव था और अनेक विशेषताएँ उनमें विद्यमान थीं। प्रतिदिन मस्जिद में कुरान सुनते और तरावीह के लिए दूर से चलकर आया करते। घर दूर था अत: अक्सर अपनी रातें मस्जिद में व्यतीत करते। हिजरी 985 (1577 ईस्वी) में माण्डू में ही इनका विसाल हुआ। इनकी ख्वाबगाह माण्डू में ही है।

हज़रत मियाँ मियाँजी बिन दाऊद रह.

हज़रत मियाँ 'गुलज़ारे अबरार' के लेखक गौसी सत्तारी के मामू हैं। इनका जन्म माण्डू में ही हुआ था। किन्तु पिताजी गुजरात के नहरवाला नामक स्थान से माण्डू सुलतान नासिरशाह खिलजी के समय माण्डू आए थे। जब हज़रत की उम्र केवल 12 वर्ष की थी तभी पिता जी का देहान्त हो गया। उन्हें कई सूफी संतों से तसव्वुफ का ज्ञान प्राप्त हुआ। ये सैयद जलाल इब्न सैयद अहमद ज़फर की कुलाइरादत के लिए अपना मुर्शिद मानते थे। सैयद जलाल अहमद कबीर रफाई के वंशज थे। इन्हें खरका ख़िलाफ़त शेख़ सद्रउद्दीन ज़ाकिर ने अता किया था। हज़रत मियाँ तिजारत करते थे और लाभांश का अधिकांश भाग हम साया दरवेशों में बाँट देते थे। हिजरी 985 (1577 ईस्वी) में इनकी मृत्यु हो गई। इनके दोनों पुत्रों ने भी पिता के संस्कारों के अनुरूप कार्य किए। छोटा पुत्र शेख हुसेन तो तपस्वी संतों में गिना जाता है।

हज़रत शेख़ बुरहान रह.

इनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था और हिजरी 982 (1574 ईस्वी) में वे शेख़ सदरूद्दीन मोहम्मद ज़ाकिर की सेवा में ग्वालियर चले गए थे। लौटकर शेख़ ज़ाकिर के साथ

माण्डू आ गए। जिक्र व शगल तथा तसव्वुफ की शिक्षा उन्होंने शेख़ ज़ाकिर से प्राप्त की। माण्डू में वे हज़रत शेख़ महमूद जलाल के पास रुके। उन्हीं दिनों मुगल सम्राट अकबर का लश्कर मालवा आया। लश्कर के साथ क़ुतुबुल अक़ताब गौसुल औलिया के पुत्र मख़दूम जादा गरामी शेख़ ज़ियाउल्ला भी आए हुए थे। शेख़ महमूद जलाल, शेख़ बुरहान और फकीर गौसी हसन सत्तारी उनसे भेंट करने के इरादे से देपालपुर आए। जब लश्कर वापस गया तब शेख़ बुरहान भी साथ हो लिए। मार्ग में अजमेर के समीप इनकी मृत्यु हो गई। इनका मज़ार वहीं स्थित है।

हज़रत शेख़ चावन इब्न उमर चिश्ती रह.

हज़रत शेख़ चावन का जन्म अजमेर में हुआ था, किन्तु मूल वतन मालवा था। ईस्वी सन् 1543 (हिजरी 950) में वे माण्डू आ गए। कुछ दिनों तक नालछा में रहे फिर जामा मस्जिद के एक बड़े गवाक्ष के नीचे बैठ गए। रेती बिछा रखी थी, वही उनका बिस्तर थी। एक पुराना कम्बल सदैव साथ रखते थे। न किसी के घर जाते थे और न ही किसी से कुछ चाहते थे। जब हिजरी 968 (ईस्वी 1560) में मुगल सेनापति पीर मुहम्मद माण्डू आया तब उसने हज़रत शेख़ के पास जाकर बुरहानपुर के फारूकी सुलतानों पर विजय की इच्छा जाहिर की। शेख़ ने इरादा बदलने का इशारा किया। पीर मुहम्मद नहीं माना और अभियान के समय नर्मदा में डूब मरा। हिजरी 989 (ईस्वी 1581) में इन संत का विसाल हुआ। सुलतान होशंगशाह के मकबरे की बाहरी सेहेन में इन्हें मदफ़ून किया गया। मालवा में ऐसे विदेह संत बहुत कम हुए हैं।

हज़रत शेख़ अब्दुल्ला बहाव अफगान रह.

हज़रत शेख़ अब्दुल्ला का जन्म और मृत्यु दोनों ही माण्डू में हुई। वे शेख़ फ़ज़लुल्लाह इब्न हुसेन मुलतानी के मुरीद थे। प्रारम्भ में वे एक सैनिक थे, परन्तु उसे छोड़कर फकीरी स्वीकार कर ली। वे अर्धनारीश्वर भेश-भूषा में रहा करते थे। किसी से कुछ नहीं लेते थे। स्वयं जंगल से लकड़ियाँ लाकर बेचा करते थे और जो कुछ मिलता था उसका एक भाग आगंतुकों एवं अतिथियों के लिए, एक भाग स्वयं के जीवन निर्वाह में और एक भाग दीन-हीनों के लिए खर्च करते थे। हिजरी 990 (1582 ईस्वी) में इनकी मृत्यु हो गई।

शेख़ रुकनुद्दीन इब्न हज़रत महमूद रह.

शेख़ रुकनुद्दीन ने अपने तीन भाइयों के साथ तबरेज़ से आकर बयाना को अपना निवास स्थान बना लिया था। एक भाई ने विवाह करके गृहस्थ जीवन अपना लिया, लेकिन दो भाइयों ने अविवाहित रहकर फकीरी की। हेमू और अकबर के युद्ध के समय हज़रत रुकनुद्दीन बयाना से चलकर मालवा-माण्डू चले आए और सनाअत खाँ की मस्जिद को अपना आवास बनाया। यहीं रहकर साधना की और यहीं उनकी मृत्यु भी हुई। इनका अध्ययन बहुत अच्छा था। अल्प भोजन करना साधना का अंग था। बाइस वर्षों तक लोगों को कुरान मजीद पढ़ाया। अरबी भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। अपने हुजरे से जामा मस्जिद और जनाज़े की नमाज़ के अलावा कहीं भी आते-जाते थे। बयाना से एक लड़का अब्दुल गफ़्फ़ार अपने साथ लाए थे जो इनका उत्तराधिकारी

बना। 24 जमादी-उल-अव्वल के दिन हिजरी 992 में (ईस्वी 1584) इनका देहावसान हुआ। मज़ार सैयद महमूद की मस्जिद के सहन में स्थित है।

अल्लामाए आलम हज़रत शेख़ ज़हूरउद्दीन बिन महमूद जलाल रह.

हज़रत शेख़ ज़हूर एक अच्छे हाफ़िज़, मित्र और मददगार के रूप में विख्यात रहे। मूलत: गुजरात के निवासी और गौसुल औलिया के मुरीद शेख़ सदरुद्दीन ज़ाकिर के ख़लीफ़ा थे। इन्हें सूफी सिलसिलों, उनकी साधना पद्धतियों की प्रामाणिक जानकारी थी। मुर्शिद के साथ लम्बे समय तक देशाटन करते रहे। बाद में हज़रत ज़ाकिर तो गुजरात चले गए और इन्हें माण्डू में रहकर कार्य करने की हिदायत दे दी। लगभग 10 वर्षों तक इन्होंने दीन की तरक्की व जनसेवा के काम किए। 18 शाबान हिजरी 996 (1587 ईस्वी) में यहीं माण्डू में इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी खानक़ाह में ही मदफ़ून किया गया। शेख़ दाउद इनके उत्तराधिकारी बने।

शेख़ दाऊद रह.

हज़रत शेख़ दाऊद हज़रत शेख़ ज़हूरूद्दीन के ख़लीफ़ा व जानशीन थे। वे एक तपस्वी विद्वान और सम्माननीय संत थे, जिन्होंने हज़रत शेख़ अब्दुल्ला और मख़दूम जादा हज़रत ज़ियाउल्ला की सेवा में रहकर आत्मशुद्धि और ध्यान की प्रक्रिया सीखी थी। देशाटन में दोनों मख़दूम जादे ग्वालियर चले गए और शेख़ दाऊद माण्डू लौट आए। यह घटना हिजरी 1020 (1611 ईस्वी) में हुई। माण्डू में ही इनका विसाल हुआ।

हज़रत शेख़ अब्दुल्ला भीकाजी रह.

हज़रत शेख़ अब्दुल्ला 'क़ुतुबखान जुराबखाना' के दरोगा थे। कुछ दिनों तक यही काम हज़रत स्वयं भी करते रहे, किन्तु जवानी में ही इन्हें दर्शन के प्रति असीम लगाव हो गया और सूफी रहस्यवाद-तसव्वुफ़ को समझने के प्रयत्नों में जुट गए। मजाजी मोहब्बत हकीकी इश्क में बदल गई। आपका विसाल 997 हिजरी (1588 ईस्वी) में यहीं माण्डू में हुआ। यहीं मदफ़ून भी किए गए।

हज़रत शेख़ करमुल्ला रह.

हज़रत शेख़ करमुल्ला सुइसपुर के एक व्यापारी वक्काल के सातवें पुत्र थे और हज़रत शेख़ जमनजत्ती के आशीर्वादों के कारण दुनिया में जन्म लिया था। शेख ने इन्हें उत्तराधिकारी और मुरीद बनाया। हज़रत शेख़ करमुल्ला मदारिया सिलसिले के संत थे। इनके मुर्शिद हज़रत शेख़ जमालुद्दीन का विसाल हिजरी 980 में (सन् 1572 ईस्वी) धार में हुआ। इसके पहले ही हज़रत करमुल्ला भी सुइसपुर नामक अपना मूल स्थान छोड़कर माण्डू चले आए थे। लगभग 100 वर्षों की आयु में हिजरी 1004 (1595 ईस्वी) में माण्डू में ही ये भी 'आलमें अलवी' की यात्रा पूरी कर गये। इनकी इबादत तिलावत थी। नफस पर पूरी सफलता प्राप्त कर रखी थी। इनकी इच्छा के अनुरूप इन्हें स्वयं के मकान की सहन में दफ़्न किया गया।

हज़रत 'शीरीन मज्ज़ूब' बाबा भरंग रह.

हजरत बाबा भरंग रंगीन मिजाज वाले मस्त मौला मज्जूब संत थे। निर्विकल्पक समाधि में विदेह होकर साधना करते थे। धार परगने के किसी मुकादम के पुत्र थे। इनहें स्वत: अक्ल खो देने की शक्ति प्राप्त हुई थी। घर द्वार छोड़कर माण्डू चले आए। दिन भर गाते हुए बाजारों में घूमते रहते थे और रातें हवलाई की मही के पास बैठकर गुज़ार देते थे। एक बार जब माण्डू सूना था, जैतपुर के जमींदार ने लूटमार के उद्देश्य से शहर पर धावा बोलने की योजना बनाई। इन्होंने उसके आदमियों को देख लिया और शोर मचा दिया। एक आदमी ने तलवार मारकर बाबा भरंग को घायल कर दिया। तभी एक गैबी सेना प्रकट हुई और प्राय: सभी लुटेरों को घायल कर डाला। जमींदार बहुत घायल हुआ और कुछ दिनों में मर गया। बाबा भरंग ने अपने घावों की कोई दवा न स्वयं की और न करने दी। घावों में कीड़े पड़ गए। यदि कोई कीड़ा गिर जाता था तो प्यार से उठाकर पुन: घाव में बैठा लेते थे। एक साल बाद घाव स्वत: ठीक हो गया। हिजरी 1007 में (ईस्वी सन् 1598) माण्डू में ही इनका देहावसान हुआ।

सप्त कोठरी के समीप जाली महल में बाबा की भग्नप्राय मज़ार स्थित है। यहीं पर हज़रत दाऊद बरारी की भी मज़ार है। मकबरा अपनी जालियों के लिए प्रसिद्ध है।

हज़रत शेख़ उस्मान इब्न लादन कुरेशी रह.

हज़रत शेख़ उस्मान हज़रत शेख़ फ़ज़ल उल्ला इब्न हुसेन चिश्ती के मुरीद हैं। माण्डू में ये हज़रत गौसी सत्तारी के पड़ौसी थे। तीस वर्षों की आयु में ही तपस्या प्रारम्भ कर दी थी। न तो किसी से कुछ मांगा और न ही कोई वजीफा ही लिया। मेहमान दरवेशों को भोजन कराने में आनंद अनुभव करते थे। रातें नमाज़ में गुज़ारते थे। प्रतिदिन या प्राय: जुमे के दिन चारों ओर दरूद पढ़ते हुए खाद्यान्न बाँटा करते थे। यादे हक़ में मशगूल रहते थे। मज्जूबों और सालिक बुज़ुर्गों से मिलना इनकी आदत थी। शाह मंसूर बुरहानपुरी, शाहताजू मज्जूब और पीर बाजूर से मिलकर अत्यन्त आनंदित होते थे। हिन्दी गानों के शौकीन थे। अपने हुजरे में अकेले पड़े-पड़े आधीरात तक दर्दीले गीत गाते रहते थे। मजलिस सभा में जरूर भाग लेते थे। लगभग 50 वर्षों तक ऐसा ही जीवन जीने के बाद हिजरी 1008 (ईस्वी 1599) में माण्डू में ही देहावसान हुआ।

हज़रत शेख़ दाउद बरारी रह.

इनका जन्म असीरगढ़ के समीप बोरकाम नामक गाँव में हुआ था। सिपाही थे लेकिन, तलवार छोड़कर तस्वीह पकड़ ली। तीरकमान साथ में अवश्य रखते रहे। रस्मी इरादत में किसी के अनुयायी नहीं बने। अवैसिया फ़ैज़ जीवन का अंग था। सुख और दु:ख में एक जैसे रहते थे। स्वभाव से क्रोधी अवश्य थे। लोगों से मिलना-जुलना और बस्ती में रहना पसंद न था। अधिकांश समय जंगलों में अकेले रहकर साधना करते थे। सैयद शाह मोहम्मद और शेख़ भिकारी के बेटे शेख़ जमाल के बड़े प्रशंसक थे। हिजरी 1008 (1599 ईस्वी) में इनका देहान्त हुआ। बाबा भारंग के बाजू इन्हें भी दफ्न किया गया।

हज़रत शेख़ मुबारक सिद्दीक़ी सत्तारी रह.

हज़रत शेख़ मुबारक सिद्दीकी यूँ तो शेख़ जलाल लोहांगी के मुरीद थे, किन्तु ख़िलाफ़त का ख़रका उन्हें वजीहउद्दीन अहमदाबादी के शिष्य सारंगपुर वाले संत हज़रत शेख़ अब्दुल मलिक शत्तारी से प्राप्त हुआ था। इरफान और तसव्वुफ (ब्रह्मज्ञान एवं रहस्यवाद) में उनके समकक्ष का विद्वान मिलना कठिन था। हिजरी 981 (1573 ईस्वी) में हज़रत माण्डू आ गए थे। मुहम्मद गौसी शत्तारी के पथ प्रदर्शक संत शेख़ महमूद जलाल शत्तारी से इन्होंने 'जौहरे दावत' का ज्ञान प्राप्त किया तथा चिल्ले भी किए थे। 'आमंत्रण' की खण्डशः और पूर्णतः परिणति पर इनका अधिकार था। तन्मयता इनके लिए सरल साधना थी। लगभग तीस वर्षों तक माण्डू में रहकर साधना की और हिजरी 1010 (1601 ईस्वी) में जीवन मुक्त हुए। मज़ार माण्डू में है। एक असंग्रह वृत्ति के निस्पृह संत के रूप में इनकी बड़ी ख्याति रही है।

हज़रत शेख़ महमूद इब्न सैयद मलिक रह.

हज़रत शेख़ महमूद का जन्म सूरत में हुआ था। हिजरी 980 (1572 ईस्वी) में वे सैयद अहमद बुख़ारी से मिले, लेकिन, उन्होंने मुरीद नहीं बनाया। उनकी अनुमति से इन्होंने दौलताबाद के हज़रत शेख़ अब्दुल लतीफ मुजावर को अपना मुर्शिद बनाया। इसके बाद भ्रमण हेतु निकल पड़े। हिजरी सन् 986 (1578 ईस्वी) में नालछा आ गए और एक मस्जिद की नींव रखी। आज़ाद ज़िन्दगी जीना उन्हें पसंद था। लगभग 20 वर्षों तक नालछा में प्याऊ चलाते रहे। अंत में उन्होंने स्वीकार कर लिया था कि 'ज़िन्दा को बेजान करना दरवेशों का तरीका नहीं है।' इसी आधार पर मांसाहार छोड़ दिया था। गौसी शत्तारी से बड़ा स्नेह रखते थे। हिजरी 1019 (1610 ईस्वी) में नालछा में ही इनका देहावसान हुआ। मज़ार वहीं पर मस्जिद के समीप नदी के तट पर विद्यमान है।

हज़रत शेख़ खुदाबख़्श रह.

हज़रत शेख़ खुदाबख़्श के पूर्वज 8 वीं शती ईस्वी में अरब से भारत आए थे। ये शेख़ फ़ज़लुल्ला इब्न शेख हुसेन मुलतानी के मुरीद थे। शेख़ फ़ज़लुल्ला की मज़ार नालछा में है। उन्हें एकान्तवास पसंद था। लेकिन अपनी मौज में रहते थे। रेशमी कपड़ों का व्यापार भी करते थे। उसके लाभांश का एक भाग ये फकीरों और दरवेशों को बाँट देते थे। चालीस वर्ष की आयु में इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति गरीबों को बाँट दी और फकीरी स्वीकार कर ली। सागर तालाब के पीछे पुरानी मस्जिद में इन्होंने कब्र के समान एक हुजरा बनवाया। हिजरी सन् 981 से 1022 तक (1573 से 1613 ईस्वी) हुजरे में एकान्तवास किया। इनकी तपस्या और साधना सफल हुई। इनसे मिल पाना और कुछ सीख पाना बहुत कठिन था। मुरीद बनाना, खानक़ाह चलाना, ख़ादिम रखना, उर्स और मजलिसों में शामिल होना इन्हें पसंद नहीं था। इनका मत था कि ज़िन्दगी ईश्वर आराधना में सौंपकर अपने आपको कैदे हयात से मुक्त किया जा सकता है।

हज़रत मुहम्मद गौसी शत्तारी इब्न हसन रह.

हज़रत मुहम्मद गौसी शत्तारी का जन्म माण्डू में 11 रज्जब 962 हिजरी (1554 ईस्वी) के दिन हुआ था। मौलाना कमालुद्दीन कुरेशी ने इन्हें कुरान मजीद पढ़ाया। जब वे 11 वर्ष के थे तभी उनके पिता हज़रत हसन बिन मूसा का स्वर्गवास हो गया। शेख़ बुरहानुद्दीन कालपी वालों से भी इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। सैयद शाह मोहम्मद से इन्होंने दर्शन, कश्फ (गुप्त बातों का ज्ञान) आमंत्रण आदि रहस्य सीखे। लगभग 5 वर्षों तक आगरा रहे। हिजरी 990 (1582 ईस्वी) में गुजरात गए और वहाँ हज़रत शेख़ वजीहउद्दीन के पास रहकर दर्सी किताबें (शिक्षा शास्त्र) पढ़ीं। बुरहानपुर में हकीम उस्मान बिन ईसा से 'उलूमें रियाज़ी' सीखा और हिजरी 994 (ईस्वी 1585) में माण्डू वापस आ गए। यह एक अच्छे गद्य लेखक और कवि (शायर) थे। इन्होंने हिजरी सन् 998 में 1022 (1589 से 1613 ईस्वी) के मध्य देश के 612 महान सूफी संतों का प्रामाणिक परिचय संकलित कर 'गुलज़ारे अबरार' नामक ग्रंथ की रचना की। तरीकत में वे गौसुल औलिया शेख़ मुहम्मद गौस के अनुगामी हैं। सही अर्थों में वे एक सच्चे सूफी थे। इनके जीवन के अंतिम वर्षों की कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती। ये मालवा के गौरव थे।

हज़रत सैयद हसन हुसेनी इब्न अलाबख्श चिश्ती रह.

हज़रत सैयद हसन हज़रत सैयद अली चिश्ती के मुरीद थे और माण्डू में ही पैदा हुए थे। जब अकबर के सेनापति पीर मुहम्मद ने माण्डू जीत लिया तब कई नगरवासी परिवार घर बार छोड़कर भाग गए। इनके माता-पिता भी इनसे बिछुड़ गए। उस समय सैयद हसन की आयु केवल 10 वर्ष की थी। इनके बहनोई शेख़ फ़िरोज़ ने इनकी परवरिश की। तसव्वुफ की तलाश में जामतुल औलिया शेख़ महमूद जलाल शत्तारी के पास पहुँचे। वहाँ तरीकत सीखी और 25 वर्ष की आयु में भौतिक सुखों को त्याग दिया। माण्डू नगर के छोर पर एक हुजरा बनाकर रहने लगे। वर्ष भर रोज़ा रखते थे। जंगल से लकड़ियाँ लाते और बेचकर खर्च चलाते रहे। पूरा जीवन कठिन व्रत और साधना में व्यतीत किया।

यूँ देखा जाय तो धार और माण्डू मुगल काल में भी तपस्वी सूफी संतों और दरवेशों के लिए धर्मक्षेत्र बने रहे। मुगलकाल में सूफी संत-परम्परा और उनके मर्तबों में भी कुछ नई बातें जुड़ गईं। हज़रत ख़्वाजा बहाउद्दीन नक्सबंदी ने ईस्वी 1388 से पूर्व तुर्किस्तान में जो परम्पराएँ और मान्यताएँ स्थापित की थीं वे 17 वीं सदी ईस्वी में भारत आईं। उनका मत था कि मोटे तौर पर वली दो प्रकार के होते हैं। 'वली अजलत'-प्राय: गोशानशीनी (एकान्तवास) में रहकर 'कुर्ब हक़' (खुदा से सामीप्य) के लिए बेचैन रहते हैं। 'वली अशरत'-का मर्तबा वज़ीरों जैसा होता है। हज़रते हक़ के निर्देशों पर वे सांसारिक उन्नति का कार्य करते हैं। मुगलकाल में यह धारणा प्रचलित हुई जिसे देखकर खुदा याद आ जाय। वह अल्लाह का वली होता है। तर्क शास्त्रियों ने उस पर समीक्षा करते हुए कहा 'वली-रा वली भी शनासद' अर्थात् वली को वली ही पहचानता है। कुछ वली ऐसे भी होते हैं जिन्हें देखकर खुदा तो याद नहीं आता, बल्कि दुनियादारी याद आ जाती है। वास्तव में वे वली ही होते हैं। इन्हें 'वली मला-मतिया' कहा जाता

है। वे सत्य की खोज में सद्कार्य तो करते ही हैं, लेकिन अपनी इबादत को दुनिया की नज़रों से छिपाकर रखते हैं। उन्हें हर समय दुनियादारी की फ़िक्र रहती है और इसके लिए वे अप्रकट रूप से सद्कार्य करते रहते हैं। धार और माण्डू में ऐसे अनेक 'वली मलामतिया' हुए होंगे, लेकिन, उनका परिचय ज्ञात नहीं होता। 'सफाए असरार' और 'सफे अव्वल' अनेक सूफी संत इन नगरों में रहे हैं।

इस युग में यह मान्यता भी स्थापित हो चुकी थी कि अल्लाह ने संसार में सुधार हेतु नबियों को भेजने के बाद भी 'औलिया अल्लाह' की एक श्रेणी रखी है जो 'वालिए आलम' होते हैं। इनके 10 उपवर्ग होते हैं-

1. गौस- जो फरियाद सुनते हैं। इनकी संख्या केवल एक होती है।
2. अमामान-ये संसार के दीन हीनों, यतीमों और दुखियों को पनाह देकर सद्मार्ग का संकेत करते हैं।
3. औताद-इनकी संख्या चार होती है। कुछ विचारकों के मतानुसार यह संख्या चालीस स्वीकार की जाती है।
4. अब्दाल-हर समय 40 औलिया अल्लाह को अब्दाल का मर्तबा प्राप्त रहता है।
5. अख्यार-ये नेक इंसान होते हैं और संख्या 300 रहती है।
6. अबरार-इनकी संख्या 40 होती है और नेक इंसानों में से उन्हें यह मर्तबा प्राप्त होता है।
7. अबरार अफ्ताब-यह कुतुब होते हैं और किसी क्षेत्र विशेष की व्यवस्था पर नजर रखते हैं।
8. नजबाए-ये बरगुजीजा बुज़ुर्गवारों में से होते हैं जिनकी संख्या 4000 तक रहती है।
9. मकतूम-भेद पोशीदा रखने वाले साधकों को यह मर्तबा प्राप्त होता है।
10. मफ़रद-ये फर्माबरदार होते हैं।

इन्हीं में से तीन पद नकीबों के होते हैं यह लोग सबके मर्तबों के ज्ञाता होते हैं तथा कौम की सम्पूर्ण जानकारी रखते हैं। 'नजबाए' अपना कमाल खुद भी नहीं जानते, दुनिया से पोशीदा रहते हैं, लेकिन आपस में भी एक दूसरे को नहीं पहचानते। ये लोग 'फहम गैबी' होते हैं। कुछ लोग इन्हें ही 'गैबशाह वली' का दर्जा देते हैं।

15 वीं से 18 वीं शती ईस्वी के मध्य समाज में अमीरूल उमरा, उलेमाओं तथा सेनानायकों का वर्चस्व स्थापित हुआ। सूफी संतों ने भी लेखन कार्य को आराधना का अंग बना लिया। धार में इस परम्परा की शुरूआत कब हुई यह पता नहीं चलता, लेकिन माण्डू में हज़रत शाह अब्दुल्ला शत्तारी ओला ने लेखन की परम्परा प्रारम्भ की और 'लताइफ गैबिया' नामक एक श्रेष्ठ ग्रंथ लिखा। बुरहानपुर में अनेक पुस्तकें लिखी गईं। सारंगपुर में रहते हुए शाह मंझन ने

'मधुमालती' की रचना पूर्ण की। अरबी, फारसी और हिन्दी का उत्कृष्ट साहित्य इन सूफी संतों और विचारकों से सम्पन्न होता गया।

हज़रत शाह अब्दुल्ला शत्तारी हज़रत हिसामुद्दीन के पुत्र हैं जो इश्क़िया सिलसिले के संत थे। हिजरी सन् 890 (1485 ईस्वी) में माण्डू में इनका देहावसान हुआ। गुलज़ारे अबरार में इनका विस्तृत परिचय लिखा गया है। अपने युग के वे सर्वश्रेष्ठ वक्ता, विचारक और दर्शनशास्त्री थे। वे शाही वस्त्र पहनते थे और उनके अनुयायी सैनिक वर्दी में रहते थे।

मराठा शासन काल में धार नगर को पुन: लगभग 430 वर्षों बाद 1735 ईस्वी में राजधानी बनने का सौभाग्य मिला। इस युग में यानी 1735 से 1947 तक इस नगर में अनेक सूफी संत और फकीर हुए। ईस्वी 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में कई बलिदानियों ने दीन और देश के लिए अपने प्राण न्यौछावर किए। इनमें से कई लोगों की मज़ारे यहाँ विद्यमान हैं। इन शहीदों में कई ऐसे भी है जिनका कोई परिचय उपलब्ध नहीं होता।

सूफी संतों, दरवेशों और फकीरों से सम्बन्धित लोक विश्रुत कथानक

धार और माण्डू के सूफी संतों, साधकों, मिस्कीन फकीरों और दरवेशों के सम्बन्ध में अनेकानेक कथानक समाज में प्रचलित हैं। ये कथानक शताब्दियों पूर्व से चले आ रहे हैं। समय के साथ अपमिश्रण तथा अतिशयोक्तियों ने भी उनमें अपना प्रभाव डाला है। कुछ कथानक इस प्रकार हैं–

1. कहते हैं कि राजा भोज के समय चालीस सूफी संत धार आए थे, उन्हें लोगों ने मारकर एक कुएँ में डाल दिया। कुछ दिनों बाद 'हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगाल रह.धार आए और अपनी साधना शक्ति से यह जान लिया कि उन चालीस शहीदों के अस्थि कंकाल कहाँ पड़े हुए हैं। शाह चंगाल धार नगर के एक दुर्ग द्वार के समीप बैठ गए। धार का शासक किसी असाध्य रोग से पीड़ित था और उसके उपचार हेतु वह प्रतिदिन नव प्रसूता महिलाओं के दूध से स्नान करता था। कई नवजात शिशु अपनी माता का दूध न मिलने से काल कवलित हो गए। हज़रत को भी यह समाचार ज्ञात हुआ। एक दिन प्रात: काल वे दुर्ग द्वार पर बैठे हुए थे तभी कुछ महिलाओं को सिर पर घड़े रक्खे हुए नगर प्रवेश करते देखा। पूछा क्या ले जा रही हो। उन्होंने कहा– नवजात शिशुओं का हक़ और राजा की औषधि। संत ने कहा– इनमें खून भरा हुआ है। महिलाओं ने घड़े उतार कर देखा तो उनमें दूध की जगह रक्त भरा हुआ था। राजा ने जब यह बात सुनी तो स्वयं हजरत चंगाल के पास आया। संत के दर्शन करते ही रोग मुक्त हो गया।

   हज़रत ने राजा से कहा कि मूक प्राणियों, बालकों व वृद्धों, अनाथों और असहायों का हक़ छीनना पाप है। राजा (भोज?) ने संत से उनकी मान्यताओं पर विस्तार से चर्चा की। स्वयं राजा उसकी पत्नी लीलावती तथा पं. नीरज बुद्धिसागर राजपुरोहित शाह चंगाल के मुरीद हो गए।

2. हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती को हज़रत निज़ामुद्दीन चिश्ती ने जब अपना ख़लीफ़ा बनाकर मालवा भेजा तब एक जलाली सिक्का उन्हें खर्च के लिए दिया। जब तक मौलाना की हयात रही तब तक उस सिक्के से खर्च चलता रहा। हज़रत मरीज़ों के लिया दुवा पढ़कर पानी फूँकते थे या फिर ताबीज़ बनाकर पहनने के लिए एक खाका खींच कर देते थे। शत प्रतिशत मरीज़ रोग मुक्त हो जाते थे। यह प्रथा धार में लम्बे समय तक चलती रही। हज़रत की ताबीज़ें पूरे देश में प्रसिद्ध हुईं।

3. हज़रत मौलाना गयासुद्दीन तो दुनिया से पर्दाकर लेने के बाद भी शिष्यों को पढ़ाया करते थे। बुद्धि, ज्ञान और तुतलाहट की दवा के रूप में इनके मज़ार के पास वाले अरीठे की पत्तियाँ लोग खाते थे। लाभ भी होता था। हज़रत मौलाना हिसामुद्दीन के लिए प्रसिद्ध था कि जिसे भी उन्होंने गौर से देखा उसने अवश्य ही दीन पर विश्वास किया। वे कहा करते थे कि 'आग मुनकरों को जलाती हैं कलमागों को नहीं।' कहते हैं दाह संस्कार हेतु शव यात्रा को यदि वे देख लेते थे तो शव नहीं जल पाता था। दाह संस्कार की शव यात्रा इसीलिए उनके मकबरे के पास से भी नहीं निकाली जाती।

4. हज़रत शेख़ कमालुद्दीन के समय एक संत सैयद जमालुद्दीन गौस हज यात्रा से लौटते समय धार आए उनके चेहरे की उदासी देखकर मौलाना कमालुद्दीन ने उनके अन्तर्मन की पीड़ा का कारण जान लिया, लेकिन फिर भी उनसे पूछ लिया कि हज़रत दु:खी क्यों है। सैयद जमालुद्दीन ने कहा मुझे मेरे मुर्शिद ने बतौर निशानी जो पवित्र कोड़ा दिया था वह आवे जमजम के जलस्त्रोत में गिर गया है। उसकी कमी से मैं बेचैन महसूस कर रहा हूँ। हज़रत मौलाना ने कहा कि अकल कुएँ में एक कोड़ा पड़ा हुआ है, देखो कहीं वह तुम्हारा ही तो नहीं है। हज़रत जमालुद्दीन को विश्वास नहीं हुआ। फिर भी कुएँ से कोड़ा निकाला गया। सैयद जमालुद्दीन आश्चर्य चकित थे, क्योंकि यह उनका वही कोड़ा था जो आबे जमजम में गिर गया था। मौलाना ने कहा ये अन्तर और दूरियाँ हमने बनाई हैं। इलाही तो सब जगह एक ही है। आबे जमजम भी वही है और अकलकुवाँ भी वही है। नज़रों का मयार विस्तृत होना चाहिए।

5. धार में शेख़ इब्राहिम तरबूज उगाते थे और लाभ से खानक़ाह चलाया करते थे। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में जब भीषण अकाल पड़ा और लोग भूखों मरने लगे तब हज़रत इब्राहिम ने एक ऐसे लंगर की व्यवस्था की थी, जहाँ चौबीसों घण्टे ताज़ा खाना उपलब्ध रहता था। हज़ारों लोग खाते थे मगर कभी किसी जिन्स की कमी नहीं हुई। दौलताबाद जाते समय जब मुहम्मद तुगलक धार रुका तब उसने शेख़ इब्राहिम के दर्शन किए। शेख़ ने पूरे लाव लश्कर की मेहमान नवाज़ी की। इब्नबतूता लिखता है कि शेख़ के पास 13 लाख टके नकदी सिह्लक में उपलब्ध थे।

6. हज़रत शेख़ जमालुद्दीन जमनजत्ती धार आने से पहले सुइसपुर कस्बे की एक मस्जिद के

हुजरे में रहा करते थे। एक दिन एक व्यक्ति गुस्ल के लिए देर रात में मस्जिद आया तो देखा कि हुजरे में शेख़ जमालुद्दीन के शरीर के कई टुकड़े अलग-अलग पड़े हुए हैं। भयभीत वह व्यक्ति अपने घर चला गया। प्रातः जब नमाज़ के लिए आया तो शेख़ को सही सलामत जीवित देखा। राज की यह घटना उसने कुछ लोगों को बतलाई। धीरे-धीरे बात फैलती गई और हज़रत ने भी सुनी। उन्हें यह चर्चा बड़ी नागवार लगी। कहा जिस मुँह से मेरा राज फाश हुआ है वह गूंगा हो जायेगा। वह व्यक्ति उसी क्षण से गूँगा हो गया और कुछ समय तक गूंगा ही फिरता रहा। एक दिन शेख़ के पास आया और गलती की क्षमा माँगी। शेख़ ने कोई वस्तु खाने को दी और खाते ही गूँगापन समाप्त हो गया।

सुइसपुर से शेख़ जमालुद्दीन अपने कुछ मदारिया मुरीदों के साथ धार आए और नाथों के मठ के पास एक पहाड़ी पर मुकाम किया। एक मुरीद को कहा कि जाकर नाथों से आग ले आओ। मुरीद मठ में गया। वहाँ काल भैरव के उपासकों की पूजा चल रही थी। भैरवानंद साधकों और उन्मत्त भैरवी साधिकाओं ने मुर्शिद की बलि देकर महाप्रसाद के रूप में खा लिया। जब मुर्शिद नहीं लौटा और बहुत देर हो गई तब हज़रत स्वयं मठ की ओर गए। आवाज़ लगाई- बेटा, तू जहाँ भी हो अवरोध तोड़कर बाहर आ जा। भैरव के आराधकों के पेट फट गए और संत का शिष्य जो माँस के टुकड़ों के रूप में था सदेह प्रकट व जीवित हो गया। उसने हज़रत से प्रार्थना की कि इन मृत साधकों को जीवन दान दिया जाय। चूंकि मैं इनके पेट से निकला हूँ अतः ये सब मेरे लिए माँ के समान हैं। मुरीद के तर्क से मुर्शिद का क्रोध शांत हो गया और सभी मृत साधक जीवित हो गए। हज़रत की इस अलौकिक शक्ति के समक्ष नत मस्तक काल भैरव के उपासक उनके मुरीद हो गए।

हज़रत जमालुद्दीन जब सुइसपुर में थे तब एक वैश्य दम्पत्ति ने इनसे भेंट कर निवेदन किया कि हमारे पास धन दौलत तो है, लेकिन कोई संतान नहीं है। हज़रत ने तरंग में कहा- अरे! तुम्हारे भाग्य में सात लड़के लिखे हैं लेकिन, वे तब होंगे जब तुम वचन दो कि सातवाँ बच्चा मुझे सौंप दोगे। वही लड़का मेरा उत्तराधिकारी होगा। वैश्य दम्पत्ति ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। सेठ को क्रमशः पुत्र रत्नों की प्राप्ति होती गई। जब सातवाँ पुत्र हुआ तब सेठ जी विचलित हुए और एक दूसरा बच्चा लेकर संत को सौंपने पहुँचे। संत जमालुद्दीन बाबा अन्तर्मन की बात समझ गए और कहा कि यह बच्चा तो तुमने दूसरे का लिया है। अगर अपना असली बच्चा यहाँ नहीं लाए तो अनर्थ हो जाएगा जिसे मैं भी नहीं रोक पाऊँगा। सेठ भयभीत हो गया और असली बच्चा लाकर संत को सौंप दिया। संत को देखते ही अबोध बालक मुस्कुराया और इशारे से आँखें मूंद कर सलाम किया। हज़रत ने बच्चे का नाम करमुल्ला रक्खा। बाद में वही उनका उत्तराधिकारी बना। हज़रत करमुल्ला अपने समय के लब्ध प्रतिष्ठ मदारिया संत थे, जिनकी तपोभूमि माण्डू थी।

7. धार में एक संत थे शेख़ मारूफ़। उन्होंने रहने के लिए एक छोटी कोठरी बना रखी थी। पानी और शर्बत के अलावा कुछ नहीं लेते थे। सोने और खाने की पाबंदियाँ समाप्त कर डाली थीं। जब उन्हें काबा जाने की इच्छा हुई तो आँखों पर पट्टी बाँध ली कि अब सिर्फ काबा ही देखूँगा और कुछ नहीं। खुदा की याद में रोते रहते थे। कहते हैं कि रोने पर जो गर्म आँसू निकलते थे उनसे उनकी आँख पर बँधी पट्टियाँ जल जातीं थीं। जब मक्का मुनव्वरा के लिए रवाना हुए तब उन्होंने आदम कद का एक ऐसा हुजरा बनवाया जो दो ऊँटों पर रखा जा सके। हज़रत ने उस हुजरे में उलटे लटक कर यात्रा की। वही हुजरा समुद्री जहाज में रखा गया। हज़रत उसमें भी उल्टा लटके रहे। उनका प्रण था कि अपने कोठरी वाले हुजरे से काबा तक की यात्रा वे इसी प्रकार करेंगे। प्रण पूरा हुआ। वहीं हज़रत का विसाल हुआ और मक्का मुनव्वरा में मदफून हैं।

8. हज़रत हुसेन एक महान साधक थे। माण्डू में रहकर इबादत किया करते थे। एक दिन वे हाजत रफा के लिए बाहर गए हुए थे। तभी चोरों का एक गिरोह मिला जिन्होंने इन्हें मालदार आदमी समझकर पकड़ लिया और एक गुप्त स्थान पर ले जाकर जंजीरों से बाँध दिया। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि हज़रत सुलेमानी रफ्तार से भागे जा रहे हैं लेकिन उनके पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं। पलक झपकते हज़रत अपने हुजरे में आ गए।

9. हज़रत मख़दूम क़ाज़ी बुरहानुद्दीन माण्डू में एक पहुँचे हुए संत हो चुके हैं। सुलतान होशंगशाह गोरी इनका मुरीद था। जब वह गोंडवाना की ओर गया हुआ था उन्हीं दिनों माण्डू में हज़रत का देहावसान हो गया। वहाँ उसने स्वप्न में देखा कि मिम्बर का एक पाया टूट गया है। जानकारों ने इसका अर्थ बताया कि मुर्शिद या मुरीद की मृत्यु करीब है। माण्डू आने पर पता चला कि मुर्शिद का देहावसान हो चुका है। सुलतान ने पूछा उन्हें कहा दफ्न किया गया है। हज़रत के ख़ादिमों ने बतलाया कि उनकी निजी ज़मीन पर। सुलतान ने कहा– गलत हुआ, उन्हें शाही कब्रस्तान में ऐसी जगह दफनाना था जहाँ बाद में मुझे भी दफ्न होना है। होशंगशाह मुर्शिद की मृत्यु से बेचैन था और आदेश दिया कि हज़रत की लाश को निकालकर शाही कब्रस्तान लाया जावे। ख़ादिमों ने प्रार्थना कि ऐसा करना उपयुक्त नहीं है। सुलतान नहीं माना और अपने समक्ष स्वयं खड़े रहकर कब्र खुलवाई। खुलने पर पता चला कि वहाँ केवल कफन है लाश नहीं।

   सुलतान को याद आया कि हज़रत कहा करते थे कि 'मृत्यु तो एक पड़ाव है, जीवन का अंत नहीं।' कब्र को पुन: ढक दिया गया। उसी दिन रात में हज़रत सुलतान को स्वप्न में दिखे और कहा 'तूने दरवेश के असरार का पर्दा उठाया है, भाग्य के हाथों ने दण्ड स्वरूप तुम्हारी सल्तनत की बुनियाद ही उखाड़ दी है।' परिणाम यही हुआ, होशंगशाह के बाद गौरी राजवंश ही मिट गया।

10. ऐसी ही एक घटना सुलतान महमूद शाह खिलजी के राज्यकाल में घटी थी। सुलतान के मुर्शिद हज़रत मख़दूम क़ाज़ी इसहाक रह. माण्डू के एक महान तपस्वी दरवेश थे। उनका मत था कि 'खुदा के दोश्त हक़ीक़ी हयात से जीवित रहते हैं, मृत्यु उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचाती। मृत्यु के बाद भी वे सूक्ष्म शरीर से विद्यमान रहते हैं।' जब हज़रत का विसाल हुआ तब दफनाने से पहले सुलतान उपस्थित नहीं हो पाया। उसने आज्ञा दी कि मेरे मुर्शिद की तुरवत को खोलकर उनका चेहरा दिखलाया जाय। मजबूरन कब्र खोली गई। चूँकि रात थी अतः मशालें जलाई गईं। मुख्य मशाल का गुल टूट पड़ा और वह कफन पर गिरने ही वाला था कि हज़रत ने स्वयं उसे अपने हाथ से रोककर एक ओर फेंक दिया। दृश्य देखकर सभी उपस्थित लोग आश्चर्य चकित रह गए। यह घटना अशरफी महल स्थित हज़रत की मज़ार पर हुई थी। सुलतान ने सलाम किया और कब्र बंद कर दी गई।

11. हज़रत शेख़ुल इस्लाम चायलदा सुलतान होशंगशाह गौरी के राज्यकाल में अरब जाते हुए माण्डू रूके। नगर वासियों ने स्वागत किया। खानेजहाँ खिलजी का पुत्र महमूद अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी था और भावी सुलतान का ख्वाब देख रहा था। उसने हज़रत को खाने पर आमंत्रित किया। खाना जब सामने आया तो हज़रत ने चार लुकमें महमूद को खिलाए और अशीर्वाद दिया कि सूबा मालवा की शहनशाही तुम्हें और तुम्हारी तीन पीढ़ियों को मुबारक हो। महमूद ने शुक्रिया कहा और निवेदन किया कि हज़रत हज से लौटते समय भी माण्डू आवें तो कृपा होगी। आशीर्वाद फलीभूत हुआ और महमूद खिलजी माण्डू सुलतान बन गया।

    कुछ दिनों बाद हज़रत चायलदा हज से वापस आते समय माण्डू आए। सुलतान की प्रार्थना पर यहीं रुक गए। जब शेख़ का विसाल हुआ तो उन्हें शाही कब्रस्तान में दफ्न किया गया। जब सुलतान महमूद की मृत्यु हुई तो उन्हें भी हज़रत चायलदा की मज़ार के आगे दफ्न किया गया। मृत सुलतान ने स्वप्न में अपने पुत्र गयाशशाह खिलजी को हिदायत दी कि मेरे शव को निकालकर मेरे मुर्शिद हज़रत चायलदा के कदमों के पास दफ्न करें। विद्वानों ने सलाह दी कि हज़रत की कब्र को ही सुलतान की कब्र के बराबर में बना दिया जाय। शेख़ के पुत्र सज्जादानशीन हज़रत बतहा ने निवेदन किया कि मुझे एक दिन की मोहलत दी जाय। कल प्रातः जैसी आज्ञा होगी वह किया जायेगा।

    रात में हज़रत चायलदा की कब्र अपने आप खिसककर सुलतान महमूद खिलजी की कब्र से आगे चली गई। अर्धरात्रि के समय कब्र खिसकने की आवाज़ मुजावरों ने भी सुनी। इस घटना की वर्षों तक चर्चा होती रही।

12. हज़रत शाह नजमुद्दीन शाह कलंदर की बहुत सी कहानियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं एक रात चिराग जलाने के लिए तेल नहीं था। हज़रत ने ख़ादिम को कहा चिराग में तेल की जगह

पानी भर दो। इसके बाद प्राय: रोजाना पानी का चिराग जला करता था। ख़ादिम इस राज को पचा नहीं सका और लोगों से इसकी चर्चा कर दी। उसके बाद से यह चमत्कार बंद हो गया। हज़रत ने ख़ादिम को समझाया कि औलिया अल्लाह की करामातों का कभी भी पर्दाफाश नहीं करना चाहिए। पर्दाफाश होने पर अल्लाह ऐसी शक्तियाँ वापस ले लेता है।

13. हज़रत अज़ीज़ुल्ला मुतवक्कल एक रात हुजरे से उठकर अचानक घर आए और पूछा– 'क्या तुम लोगों के पास दुनिया की चीज़ों में से कुछ है ?' पता चला की छोटी बच्ची के लिए एक प्याले दूध में रोटी का एक छोटा टुकड़ा गलाकर रखा हुआ है। हज़रत ने कहा– उसे बाहर ले जाकर दरवेश या फिर भूखे जानवर को खिला दो। आज्ञा का पालन किया गया। हज़रत अपने मुसल्ले में जाकर लेट गए। रात में बच्ची भूख से रोने लगी तो उसे लाकर हज़रत के पास मुसल्ले के कोने में लिटा दिया गया। हज़रत ने अपने पाँव का अँगूठा बच्ची के मुँह में दे दिया। बच्ची चुप हो गई। देखा गया कि अँगूठे से दूध निकल रहा था और बच्ची उसे पी रही थी।

14. हज़रत पीर बाजूर भी माण्डू के एक पहुँचे हुए संत थे। एक दिन मोहम्मद गौसी शत्तारी के मामू उन्हें मिल गए। कहा कुछ लाओ। मामू ने कहा– मेरे पास अभी कुछ भी नहीं है। हज़रत ने मामू साहब की कमर में हाथ डाला और हमयानी खोल ली। उसमें से दो मुज़फ़्फ़री सिक्के निकाले और हमयानी वापस कर दी। यही नहीं एक सिक्का और भी मामू को वापस दे दिया तथा चले गए। घर जाकर मामू ने जब हमयानी खोली तो वह पूरी भरी हुई थी। यूँ हज़रत ने एक सिक्का लेकर सैकड़ों दे दिए।

    शहर में टाट बेचने वाला एक हिन्दू बनिया हज़रत बाजूर को बहुत सम्मान देता था। उसे कोई औलाद न थी। एक बार वह बहुत बीमार हुआ और ऐसा लगने लगा कि मृत्यु सन्निकट है। अचानक हज़रत उसके घर आए और कहा दोश्त मरना छोड़ो अभी तो तुम्हें पाँच बेटों की परवरिश करनी है। हज़रत बैठे रहे और वह बनिया स्वस्थ हो गया। बाद में उसको पाँच बेटे भी हुए। सुलतान बनने से पहले एक दिन मियाँ बयाजिद (बाज़बहादुर) हज़रत की ख़िदमत में हाज़िर हुआ। हज़रत अन्तर्मन की इच्छा जान गए। अपने हाथ पर हाथ मारकर कहा– 'पाया मजबूत नहीं है जल्दी धंस जाएगा'। बाज़बहादुर को उसके शासनकाल में यही कथन चरितार्थ हुआ। हज़रत अक्सर माण्डू किले के उत्तरी दरवाज़े के पास बैठा करते थे। एक दिन कुछ यात्री वहाँ आए। उन्हें ज़ोरों से प्यास लग रही थी। हज़रत ने वहीं एक गड्ढा बनाया जो मीठे ठंडे पानी से भर गया। बाद में वर्षों तक लोग उसका शीतल जल पीते रहे।

इस प्रकार के सैकड़ों कथानक आज भी समाज में प्रचलित है। धार और माण्डू की पवित्र धरती औलिया अल्लाह से भरी पड़ी है। कहते हैं एक बार एक संत ऊँट पर सवार धार आए, लेकिन ऊँट से उतरे बिना नगर सीमा से ही वापस चले गए। जब उनके अनुयायियों ने

इसका कारण जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि नगर में औलिया अल्लाह की इतनी ख़्वाबगाहें हैं कि पैर रखने को जगह नहीं बचती।

वस्तुतः धार और माण्डू सूफी संतों की तपोभूमि है। यहाँ के संतों का परिचय लिख पाना सम्भव ही नहीं है। उनका परिचय शब्दों से नहीं आत्मा की पवित्रता से जाना जा सकता है। 'सूफी' एक दर्शन है, चिन्तन है और एक जीवन पद्धति है। इसमें प्राणिमात्र के प्रति प्यार, बसुधैव कुटुम्बकम्, निग्रह, अपरिग्रह और गुरू के प्रति सम्मान को साधना का माध्यम माना जाता है।

सन्दर्भ :-

(1) अलबेरूनी कृत-'तहकीक-ए-मालिल-ए-हिन्द' सचाओं कृत अनुवाद-पृ. 202 से 5 (भाग-एक)

(2) मालवा में मुसलिम सम्प्रभुता के ऐतिहासिक संदर्भ क्रमशः ज़ियाउद्दीन बर्नी कृत 'तारीख़-इ-फ़िरोज़शाही' अमीर खुसरो कृत 'खज़ाइन-उल-फुतूह' एवं 'तुगलकनामा' इब्नबतूता कृत 'रेहला' अफीफ कृत 'तारीख़-इ-फ़िरोजशाही' याहिया बिन अहमद कृत 'तारीख-इ-मुबारकशाही' मुहम्मद बिहमादखानी कृत 'तारीख़-इ-मुहम्मदी' अली बिन महमूद अल किरमानी कृत 'मासिर-इ-महमूदशाही' एक दरबारी लेखक की 'तारीख़-इ-नासिरशाही'-शेख़ रिजकुल्लाह मुस्ताकी कृत 'वाकियात-इ-मुश्ताकी' ख़्वाजा निज़ामुद्दीन अहमद कृत 'तबकात-इ-अकबरी' मुहम्मद क़ासिम हिन्दू बेग अस्तवादी फरिश्ता कृत 'गुलशने इब्राहिमी' सिकन्दर बिन मुहम्मद मंझू कृत 'मिरात-इ-सिकन्दरी' अब्दुल्ला मुहम्मद बिन उमर अलमक्की उर्फ हाजी उद्दबीर कृत 'ज़फ़रूल वलेह बे मुजफ़्फ़र व अलेह' मीर अबू तूराब कृत 'तवारीख़-इ-गुजरात' 'तारीख़-ई-मुजफ़्फ़रशाही' सैयद अली बिन अज़ीजुल्लाह तबतला कृत 'बुरहान-इ-मासिर' महमूद गंवा कृत 'रियाज़ुल इंसा' मुल्ला सन् अहमद सम्पादित 'तारीख़-इ-अल्फ़ी' गुलबदन बेगम कृत 'हुमायूं नामा' अब्बास खाँ सरवानी कृत 'तारीखे शेरशाही' अबुल फज़ल अल्लामी कृत 'आइने अकबरी' व 'अकबरनामा' अब्दुल कादिर बदायुँनी कृत 'मुन्तखाब-उत-तवारीख' जहाँगीर कृत 'तुजुक-इ--जहाँगीरी' मुहम्मद खाँ कृत 'इकबाल नामाए जहाँगीरी', सुजानराय भण्डारी कृत 'खुलासत-उत-तवारीख' और राय चतुरमन कृत 'चहार गुलशन' आदि हैं।

(3) मुंशी करीम अली कृत 'तवारीख-इ-मालवा'-पृ. 45 इत्यादि। इस ग्रंथ के संदर्भ पुराविद श्री सलीमुद्दीन सिद्दीकी के सहयोग से संकलित किए गए हैं।

(4) इब्नबतूता-रेहला. पृ. 167

(5) सैयद मुहम्मद मतीउल्ला राशिद बुरहानपुरी कृत-'बुरहानपुर के सिन्धी औलिया'-पृ. 364-65

(6) खुसरो-'ख़ज़ाइनुल फुतूह-पृ. 44' इसी समय विजेता सेनापति मुलतानी को 'आइनुलमुल्क' की उपाधि से विभूषित किया गया। याह्या सरहिन्दी ने 'तारीख-इ-मुबारकशाही' में माण्डू विजय की तिथि हिजरी 700 (ईस्वी 1300-1) बतलाई है, जो गलत है।

(7) ज़ियाउद्दीन बर्नी के अनुसार नासिरूद्दीन खुसरोशाह साढ़े चार महीने ही शासक रहा। किन्तु याह्या सरहिन्दी ने सुलतान बनने की निश्चित तारीख मुबारकशाही में 5 रबी उल अव्वल 720 हिजरी (यानी 20 अप्रैल 1320 ईस्वी) लिखी है, जबकि खुसरो ने सुलतान की मृत्यु तिथि 1 शाबान 720 हिजरी (यानी 6 सितम्बर 1320 ईस्वी) का स्पष्ट उल्लेख किया है।

(8) होडीवाला; स्टडीज, पृ. 881 'कुतुलुग खाँ का मुख्यालय देवगिरि ही बना रहा और वह कभी भी धार नहीं

आया।'

(9) बद्रे चाच कृत 'चाचनामा' से ज्ञात होता है कि वह 18 दिसम्बर 1345 ईस्वी से पहले धार के लिए रवाना नहीं हो सका था।

(10) इलियट., तीन, पृ. 244

(11) शम्स सिराज अफीफ ने 'तारीख-इ-फ़िरोज़शाही' में धार की इक्ता के अधिकारी का नाम नहीं लिखा, किन्तु मुहम्मद विहमंद खान कृत 'तारीख-इ-मुहम्मदी' की पाण्डुलिपि के पृ. 417 में निज़ामुद्दीन के नाम का उल्लेख है।

(12) फरिश्ता ने (जिल्द-2 पृ. 460-61) दिलावर खाँ के पितामह को एक स्थान पर शिहाबुद्दीन मुहम्मद बिन साम का वंशज लिखा है और दूसरे स्थान पर गोर का निवासी बतलाया है। फरिश्ता के अनुवादक ब्रिग्स ने तो दिलावर खाँ की माता की ओर से दमिश्क के सुलतान शिहाबुद्दीन गोरी के वंश से संबंधित माना है। एस.एन.डे. ने 'मेडिवल मालवा' तथा बूल्जले हेग ने 'कैम्ब्रिज. तीन-पृ. 349' में लिखा है कि दिलावर खाँ को 1388 ईस्वी में ही मालवा का सूबेदार बना दिया गया था।

(13) आगा मेंहदी हुसैन और डे ने यह तिथि 8 रबी उस्-सानी 801 हिजरी (बुधवार 18 दिसम्बर 1397 ईस्वी) मानी है।

(14) ब्रिग्स-फरिश्ता-चार पृ. 169 'मिराते सिकन्दरी' के अनुसार सुलतान की कोई प्रार्थना मालवा के सूबेदार ने नहीं सुनी और सुलतान मुहम्मद तुगलक निराश होकर धार से कन्नौज चला गया।

(15) मासिर-इ-आलमगीरी, पृ. 442

(16) इनायतुल्ला कृत 'अहकाम-इ-आलमगीरी'-पृ. 21, 22 व 85 तथा 'मासिर-इ-आलमगीरी', पृ. 512

(17) कलीमात-इ-कव्वियात, पृ. 44-45, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब पृ. 386

(18) वीरेन्द्र स्वरूप भटनागर कृत 'सवाई जयसिंह'-पृ. 206 जयपुर के निर्माण में जयसिंह को विद्याधर से विशेष सहायता मिली। इस नगर की नींव 18 नवम्बर 1727 ईस्वी को रखी गई। ईस्वी 1729 तक नगर का एक बड़ा भाग बनकर तैयार हो गया।

(19) तबकाते-अकबरी-तीज पृ. 180 व 375 तथा 'मिरात-इ-सिकन्दरी-पृ. 185-87' 1 जनवरी 1518 ईस्वी के दिन गुजरात सुलतान मुजफ्फरशाह धार के लिए चला। मेदिनीराय ने जब यह सुना तो वह भी राय पिथौरा, भीमकरण, शादी खाँ, बुद्धन और उग्रसेन को धार तथा माण्डू की सुरक्षा का भार सौंपकर दो हजार घुड़सवार राजपूतों के साथ धार होते हुए राणा-सांगा से सहायता मांगने चला गया। 6 फरवरी 1518 ईस्वी के दिन गुजराती सेना ने माण्डू पर आक्रमण किया और 13 फरवरी 1518 ईस्वी के दिन किले को जीत लिया। लगभग 40 हजार लोग मारे गए और राजपूत नारियों ने जौहर किया। स्पष्टत: परिचय लेखक ने तिथियों और घटनाओं के क्रम को ध्यान में नहीं रखा है।

संतों के परिचय का आधार ग्रंथ मुहम्मद गौसी शत्तारी कृत 'गुलज़ारे अबरार' है जिसके उर्दू अनुवाद 'अज़कारे अबरार' का ही विशेष रूपेण उपयोग किया गया है।

हज़रत शेख़ चावन इब्न उमर चिश्ती रह.

हज़रत शेख़ चावन का जन्म स्थान अजमेर है। हज़रत गौसी शत्तारी ने गुलज़ारे अबरार में शेख़ का परिचय तो लिखा है, किन्तु जन्म तिथि का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। यह जरूर लिखा है कि हिजरी 950-51 के लगभग यानी सन् 1543-44 के आसपास प्रव्रजन करते हुए एक सय्याह संत के रूप में मालवा आ गए थे। कुछ दिनों तक माण्डू के समीप नालछा [1] में रहे फिर माण्डू आ गए और जामा मस्जिद के एक बड़े गवाक्ष को अपने रहने बैठने तथा सोने के लिए चुन लिया। फर्श पर एक टोकरी रेती फैलाकर रखते थे, वही हज़रत का आसन भी था और बिस्तर भी था। पैबंदों से भरा हुआ एक पुराना कम्बल था जिसे शर्दी की रातों में ओढ़ लिया करते थे। न तो किसी से कुछ मांगते थे और न ही किसी के घर जाया करते थे। हज़रत ने लगभग तीस वर्षों तक इसी प्रकार से माण्डू की जामा मस्जिद के उसी हुजरे में तपस्या की थी। हिजरी 968 (1560) के लगभग तक वहीं रहे। गौसी शत्तारी ने यह तिथि अकबर की सेना से पराजित बाज़ बहादुर के निर्वासन काल की लिखी है जो गलत है। [2] उन्होंने 968 हिजरी को ईस्वी तिथि 1547 लिखकर सारी भूल को जन्म दिया है।

मुगल सम्राट अकबर के छठे सन जुलूस के बाद [3] 24 जमादी उल आखिर 968 हिजरी यानी 12 मार्च 1561 ईस्वी को मालवा अभियान प्रारम्भ हुआ। अकबर नामा (दो-पृ. 210) के अनुरूप वह तिथि 10 मार्च होनी चाहिए। उस अभियान में मुगल सेनापतियों में पीर मोहम्मद, अब्दुल्ला खाँ, किया खाँ कांग, शाह मोहम्मद कंधारी, आदिल खाँ और उसका पुत्र सादिक खाँ, हबीब कुली खाँ, हैदर अली खाँ आदि अनेक वीर सम्मिलित हुए थे। बाद में 11 शाबान 968 हिजरी यानी 27 अप्रैल 1561 को अकबर स्वयं आ गया। पराजित बाज़ बहादुर भागता फिरा और अन्तत: 969 (1562) को मालवा पर मुगलों का कब्जा हो गया। [4] वास्तव में मालवा विजय के बाद अकबर ने जो व्यवस्था की थी, उसमें पीर मोहम्मद को मालवा का गवर्नर बनाया गया था। हज़रत चावन का परिचय लिखते हुए गौसी शत्तारी ने यही बात इस प्रकार लिखी है कि- 'बख्शीयान सूवा ने सरकार मांडव को पीर मोहम्मद खान के नाम से जागीर में दे दी और उसके मुत्तालिक तीन हज़ार सवार की तनख़्वाह कर दी।'

गौसी शत्तारी लिखते हैं कि 'दूसरे साल साहबे ज़मीर पीर मोहम्मद हज़रत चावन की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और ख़ानदेश जीतने का इरादा ज़ाहिर किया। हज़रत ने उसे इजाजत नहीं दी। इसके बाद भी वह नहीं माना, अभियान पर गया, पराजित हुआ और नदी में डूबकर मर गया।' मोतविद खाँ ने 'इक़बाल नामा-ए-जहाँगीरी' (पृ. 77) में यद्यपि शेख़ हज़रत चावन का नाम नहीं लिखा लेकिन एक कथानक ज़रूर लिखा है कि- माण्डू में पीर मोहम्मद एक दिन जामा मस्जिद में रहने वाले एक महान साधक फकीर से मिला और उससे अपने बीजागढ़ और काकरून (खरगोन) अभियान का परिणाम पूछा। फकीर ने कुरान पाक़ लेकर फल निकाला कि- तुम पराजित होगे। पीर मोहम्मद उस भविष्य कथन से बड़ा नाराज़ हुआ और फकीर की लकड़ी से बहुत पिटाई कर डाली।'लेडी ऑफ द लोटस' (फुट नोट 73 - पृ. 91) में भी इस भविष्य कथन का उलेख उपलब्ध है। पीर मोहम्मद उसी अभियान के दौरान नर्मदा में डूबकर मर गया था। मुल्ला पीर मोहम्मद शिखान का निवासी था और बैरम खाँ का विश्वस्त व्यक्ति था। पुस्तकालय की साज सम्हाल करने के लिए उसे सर्विस में रखा गया था लेकिन भाग्य से वह मालवा का प्रशासक बन गया।

उक्त घटना और हज़रत के भविष्य कथन के बाद से मुगल अधिकारी उन पर बड़ी श्रद्धा रखने लगे। हिजरी 989 (1581 ईस्वी) जो मंगलवार 29 दिसम्बर से प्रारम्भ हुआ था - हज़रत का विसाल हो गया। हज़रत को होशंगशाह के मकबरे के प्रांगण में दफन कर दिया गया। यदि जामा मस्जिद वाले हुजरे में तीस हिजरी वर्षों तक रहने के कथन को स्वीकार कर लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि 959-60 हिजरी के लगभग यानी 1532 के आसपास नालछा से माण्डू आए रहे होंगे। इसके पहले अजमेर से आकर हज़रत नालछा में रुके हुऐ थे। वह अवधि भी आठ-दस वर्ष की होगी। हज़रत का साधना काल सत्ता परिवर्तन का संक्रमण काल था।

संदर्भ :-

1. गौसी शत्तारी गुलज़ारे अबरार-पृ. 282, बुज़ुर्गान दीन-ए-मालवा, पृ. 90-91 में मुख़्तार अहमद ने भी यही तथ्य लिखे हैं। नालछा तो माण्डू का प्रवेश द्वार ही था और हज़रत कलंदर की दरगाह के कारण ज़ियारतगाह माना जाता था।
2. मुख़्तार अहमद ने 'बुज़ुर्गान दीन-ए-मालवा' में इसी तिथि को बिना किसी परीक्षण के सच मान लिया है और लिखा है कि- 'हिजरी सन 968 मुताबिक अंग्रेजी 1547 ईस्वी में जबकि सूबा मालवा बाज़ बहादुर इब्न शुजावल खां अफगान के कब्जे से निकलकर मुगल बादशाह अकबर के कब्जे में आया ----'।
3. मोतविद खाँ ने इकबाल नामा-ए-जहाँगीरी - पृ. 165-66 में लिखा है कि छठा जुलूसी सन् 23 जमादी उल-आखिर 968 हिजरी से प्रारम्भ हुआ था।
4. अबुल फज़ल - (अकबर नामा-दो, पृ. 261) मालवा को मुगल साम्राज्य का अंग बनाए जाने की तिथि (7 वां जुलूसी सन्) मार्च 11, 1562 मानता है।

हज़रत शेख़ बुरहान रह.

हज़रत शेख बुरहान रह. का जन्म गुजरात में हुआ था। हिजरी सन् 982 (1574) में अपने मुर्शिद हज़रत शेख़ सद्रुद्दीन के साथ शेख़ बुरहान भी प्रवास पर ग्वालियर गए हुए थे। लौटते समय शेख़ ज़ाकिर के साथ ही हज़रत भी माण्डू आए। हज़रत ज़ाकिर रह. शत्तारी सिलसिले के प्रतिष्ठित साधक थे। तसव्वुफ का तरीका, ज़िक्र व शगल हज़रत ने उन्हीं से सीखा था और अपनी साधना का अंग बना लिया था। हज़रत ज़ाकिर रह. की आश्रय से और हज़रत शेख़ महमूद जलाल के सान्निध्य की कामना से शेख़ बुरहान रह. ने माण्डू को अपना आवास बना लिया। हज़रत शेख़ जलाल रह. कालपी के सूफी साधक थे और माण्डू को अपनी इबादतगाह बना रखी थी।

माण्डू विजय के बाद मुगल सम्राट अकबर दो बार 1564 और 1598 में मालवा आया। हिजरी 972 (1564) में जब वह पहली बार मालवा आया तब उसके लश्कर के साथ कुछ विख्यात सूफी संत भी थे। उन संतों में क़ुतुबुल अक़ताब गौस उल औलिया ग्वालियरी के पुत्र मख़दूम जादा गरामी दाना-ए-रमूज-ए आफ़रीनस हज़रत शेख़ ज़िया उल्लाह मुख्य थे। हज़रत मख़दूम जादा से मुलाकात के उद्देश्य से हज़रत शेख़ महमूद जलाल, हज़रत शेख़ बुरहान रह. और हाफ़िज़ सालेह तथा गौसी शत्तारी रह. जैसे दिग्गज विद्वान संत माण्डू से देपालपुर के लिए रवाना हुए। उस समय हज़रत मख़दूम जादा तथा शेख़ ज़िया उल्लाह रह. लश्कर के साथ देपालपुर में रुके हुए थे। वहाँ से जब शाही ख़ेमा अजमेर होते हुए आगरा की ओर लौटा तब हज़रत शेख़ बुरहान और हाफ़िज़ सालेह भी लश्कर के साथ चले गए। मार्ग में जब वे अजमेर में रुके हुए थे तब हज़रत शेख़ बुरहान का स्वर्गवास हो गया। वहीं हज़रत की मज़ार बना दी गई। हज़रत का प्रारम्भिक जीवन गुजरात में जरूर बीता लेकिन साधना का सार्थक जीवन माण्डू में व्यतीत हुआ। ऐसा लगता है मुख़्तार अहमद खान हज़रत की ग्वालियर यात्रा का जो समय 982 हिजरी (1574 ईस्वी) दिया है वह गलत है। चूँकि हज़रत 972 हिजरी (1564) में माण्डू में थे- अत: वह तिथि (982 हिजरी) 972 हिजरी के पूर्व की ही होनी चाहिए।

हज़रत मियाँ मियाँ जी बिन दाऊद रह.

हज़रत मियाँ मियाँ जी बिन दाऊद रह. गुलज़ारे अबरार के लेखक हज़रत गौसी शत्तारी बिन हसन बिन मूसा गुजराती रह. के मामू हैं। गौसी शत्तारी ने लिखा है कि हज़रत का जन्म माण्डू में हुआ था, और उनके पिता सुलतान नासिर शाह खिलजी के राज्य काल में महरवाला-गुजरात से आकर माण्डू में बस गये थे।[1] हज़रत अस्सी वर्ष की आयु में 985 हिजरी (1577 ईस्वी) में स्वर्गवासी हुए थे। यानी हज़रत का जन्म 905 हिजरी (1499) में हुआ था। हिजरी सन् 905 की शुरुआत गुरुवार 8 अगस्त 1499 को हुई थी। फरिश्ता के अनुसार गयासशाह संग्रहणी रोग से ग्रसित था और 9 रमज़ान 906 हिजरी (23 मार्च 1501 ईस्वी) को उसकी जीवन ज्योति विलुप्त हुई थी।[2] शहजादा नासिर शाह 9 शाबान 906 हिजरी (28 फरवरी 1501 ईस्वी) को शेर खाँ के विद्रोह को कुचलने की गरज से धार आ चुका था। वहीं उसने सुलतान गयासशाह की मृत्यु का समाचार सुना था। लेकिन, इससे पहले ही शुक्रवार 27 रबी उल आखिर 906 हिजरी (यानी 20-11-1500 ईस्वी) को ही उसके नाम का खुतबा पढ़ा जा चुका था। सुलतान गयासशाह ने भी अपनी असमर्थता के कारण 13 जमादी उल आखिर यानी 4 जनवरी 1501 में ही अपना पद त्याग दिया था। इस आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि हज़रत मियाँ मियाँ जी का जन्म 20 नवम्बर 1500 ईस्वी के बाद 906 हिजरी में हुआ रहा होगा। वह हिजरी सन् गुरुवार 28 जुलाई से प्रारम्भ हुआ था।

हज़रत मियाँ मियाँ जी की आयु जब केवल बारह वर्ष की थी तभी, यानी हिजरी 918 को (1512 ईस्वी) हज़रत के पिता जी हज़रत दाऊद रह. का स्वर्गवास हो गया था। हज़रत मियाँ जी का सम्पर्क अनेक सिलसिलों के संतों के साथ रहा था। फिर भी हज़रत को कुला इरादत सय्यद जमाल इब्न सय्यद अहमद ज़फ़र से हासिल हुई थी। हज़रत सय्यद अहमद ज़फ़र हज़रत कबीर रफाई के वंशज थे। हज़रत मियाँ जी को खर्का ख़िलाफ़त हज़रत शेख़ सदरुद्दीन ज़ाकिर रह. से प्राप्त हुई थी, जिनकी ख़्वाबगाह बड़ौदा (गुजरात) में विद्यमान है। हज़रत प्राय: तिजारत के माध्यम से जीविका चलाते थे। उससे जो लाभ मिलता था उसे भी दरवेशों में बाँट कर उपयोग करते थे। यानी हज़रत कार्य-व्यवहार, साधना एवं रहन-सहन में पूरे सूफी संत थे। पक्के नमाज़ी भी थे।

हज़रत मियाँ मियाँ जी के मुर्शिद हज़रत शेख़ सदरुद्दीन ज़ाकिर रह. शत्तारी सिलसिले में हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी रह. की परम्परा के अनुयायी रहे हैं। पारिवारिक परम्परा में मियाँ जी के दो पुत्रों का उल्लेख मिलता हैं। बड़े पुत्र हज़रत ताज मोहम्मद ने जीविका के लिए सैनिक पेशा स्वीकार कर लिया था। छोटा पुत्र शेख़ हुसैन पिता के पथ का अनुयायी था।[3] साधना की दृष्टि से पिता के मार्गदर्शन में ही बहुत कुछ प्राप्त कर लिया था।

संदर्भ :-

1. हज़रत गौसी शत्तारी – 'गुलज़ारे अबरार'– पृ. 284, मुख़्तार अहमद–बुज़ुर्गान दीन–ए–मालवा– पृ. 89.
2. तबकाते अकबरी (निज़ामुद्दीन) तीन, पृ.357, फरिश्ता–दो, पृ. 509, तारीखे नासिरशाही से उद्धृत संदर्भ – उपेन्द्र नाथ डे – मेडिवल मालवा– पृ. 243.
3. गौसी शत्तारी–वही, पृ. 284, तथा पृ. 228 पीर बाजूर रह. का परिचय भी देखिए।

हज़रत शेख़ जाइरुल्ला रह.

हज़रत शेख़ जाइरुल्ला रह. ऐसे साधक हैं जिनका जन्म माण्डू में हुआ था। हज़रत के पिता का नाम हज़रत उमर माण्डवी या माण्डव वाला था। हज़रत के पितामह माण्डू सुलतानों के समय मालवा आ गए थे और राजधानी माण्डू में कालीन बनाने का एक कारखाना स्थापित कर रक्खा था। [1] उनके पुत्र हज़रत उमर ने अपना उद्योग छोड़कर दरवेशी जीवन यापन करना स्वीकार कर लिया था। वही परम्परा हज़रत उमर माण्डववाला के पुत्र हज़रत जाइरुल्लाह रह. ने भी चालू रखी। साधना तो हज़रत के रक्त में घुली हुई थी। गौसी शत्तारी लिखते हैं कि अस्सी वर्ष की आयु तक हज़रत ने माण्डू में रहते हुए तपस्या की। एक बार रमजान महीने में 985 हिजरी के दौरान यानी 1577 ईस्वी में हज़रत ने कहा कि यह रमज़ान उनके जीवन काल का अंतिम रमज़ान होगा और शीघ्र ही उन्हे ईद विसाल प्राप्त होगी। कुछ दिनों बाद 986 हिजरी में (1578 में) उनका स्वर्गवास हो गया। उस वर्ष हिजरी सन् सोमवार 10 मार्च से प्रारम्भ हुआ था। इस संकेत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हज़रत का जन्म हिजरी सन् 880-81 के लगभग हुआ होगा। हज़रत रमज़ान के महीने में कुरान पाक़ सुनने और तराबी पढ़ने की गरज से प्रतिदिन माण्डू की जामा मस्जिद आया करते थे और रात वहीं गुजारते थे क्योंकि आवास मस्जिद से दूर था।

हज़रत का परिचय यद्यपि विस्तृत रूप से प्राप्त नहीं होता, किन्तु तत्कालीन समाजार्थिक परिस्थितियों की दृष्टि से वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। [2] व्यवसाय और उद्योग धंधे छोड़-छोड़ कर लोग दरवेशी अपना रहे थे। जीवन यापन सरल और सादा था। यदि हज़रत शेख़ जाइरुल्ला रह. का जन्म 880 हिजरी (1475) मान लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि हज़रत गयासुद्दीन खिलजी के बाद माण्डू सल्तनत के पतन के द्रष्टा थे।

संदर्भ :-

1. उपेन्द्र नाथ डे ने 'मेडिवल मालवा' में पृ. 360-63 के बीच माण्डू सुलतानों के समय के उद्योगों का विवरण लिखा है, किन्तु यहाँ कालीनें भी बनाई जाती थीं, इसका कोई संदर्भ नहीं दिया। इस दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ है।
2. देखिए गौसी शत्तारी कृत 'गुलजारे अबरार' में उद्धृत संदर्भ- बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा- पृ. 88.

हज़रत शेख़ कमालुद्दीन बिन शेख़ सुलेमान कुरेशी रह.

हज़रत शेख़ कमालुद्दीन रह. का जन्म कालपी (मुहमदाबाद) में हुआ था और उनके पिता का नाम हज़रत सुलेमान क़ुरेशी था। तक़वा, तवक्कल, तसलीम और रज़ा हज़रत की साधना का अंग था। वैसे तो हज़रत कमालुद्दीन बिन शेख़ सुलेमानुद्दीन कुरेशी रह. पीरी-मुरीदी की दृष्टि से मदारिया सिलसिले के संत हज़रत शाह अरगोन मदारी के मुरीद थे, लेकिन हज़रत ने अस्मा-ए-इलाही और अज़कार की इज़ाज़त हज़रत शेख़ रुकनुद्दीन शत्तारी रह. से प्राप्त कर रखी थी।[1] हज़रत शेख़ रूकनुद्दीन शत्तारी रह. हज़रत शेख़ अबुलफ़तह हिदायतुल्ला सरमस्त के पुत्र थे और वे हज़रत शाह काजन मोहम्मद औला बंगाली के बेटे थे तथा खर्का ख़िलाफ़त हज़रत शाह अब्दुल्ला शत्तारी रह. से प्राप्त थी। यानी हज़रत शेख़ कमालुद्दीन रह. साधक परम्परा में मुख्य शत्तारी सिलसिले से सम्बद्ध थे।[2]

गौसी शत्तारी ने लिखा है कि हज़रत कमालुद्दीन रह. का जन्म कब हुआ था, यह तो ज्ञात नहीं है, किन्तु, वे सुलतान बाज़ बहादुर के शासन काल (1555-62) में मालवा (माण्डू) आ गए थे। माण्डू में हज़रत गौसी शत्तारी के पिता हज़रत हसन बिन मूसा से परिचय होने पर हज़रत उन्हीं के पास रहते रहे। हज़रत गौसी शत्तारी जब पाँच वर्ष की आयु के हुए तब तालीम कुरान के लिए उन्हें हज़रत शेख़ कमालुद्दीन रह. को सौंप दिया गया था। उन्ही से दो वर्षों की अवधि में गौसी शत्तारी ने कुरान शरीफ का हाफ़ज़ा पूरा कर लिया था। चूँकि गौसी शत्तारी का जन्म 11 रज्जब 962 हिजरी (1554 ईस्वी) में जब हिजरी सन् सोमवार 26 नवम्बर से प्रारम्भ हुआ था- माना जाता है। अत: यह कहा जा सकता है कि हिजरी 967 यानी 1559 से कुछ समय पहले ही हज़रत माण्डू आए रहे होंगे। कहते हैं कि हज़रत ने लगभग सौ वर्ष की उम्र तवक्कल में गुजारी थी और किसी भी व्यक्ति से अपना राज व न्याज नहीं कहा। हिजरी सन् 973 (1567) में माण्डू में रहते हुए हज़रत स्वर्गवासी हुए। इनका मज़ार गौसी शत्तारी के पिता हज़रत हसन बिन मूसा के पास बनाया गया।

हज़रत गौसी शत्तारी के उक्त विवरण के आधार पर यदि 973 हिजरी में हज़रत की आयु सौ वर्ष की मान ली जाय तो सुविधापूर्वक यह कहा जा सकता है कि लगभग 873 हिजरी में

हज़रत का जन्म कालपी में हुआ होगा। हिजरी 873 (1468 ईस्वी) तक कालपी का झगड़ा भी सुलझ चुका था और वहाँ शांति थी। माण्डू के इतिहास में वह समय महमूद खिलजी प्रथम के जीवन का अंतिम वर्ष था। हिजरी 890 (1485 ईस्वी) में इसी माण्डू की धरती पर शत्तारी सिलसिले को भारतीय परिवेश में प्रवर्तित करने वाले संत हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी ने अंतिम सांस ली थी। वहीं उनके ख़लीफ़ा हज़रत औला बंगाली उर्फ शेख़ काजन के पौत्र के ख़लीफ़ा हज़रत शेख़ कमालुद्दीन रह. ने भी 82 वर्ष बाद स्वर्गारोहण किया। हज़रत एक निस्पृह साधक थे।

हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी रह. के बाद जो खर्का ख़िलाफ़त मोहम्मद औला बंगाली उर्फ शेख़ काजन को मिला था वही उनके पुत्र शेख़ अबुल फ़तेह हिदायतुल्ला सरमस्त, फिर शेख़ ज़हूर हाजी, हमीद हसूरी तथा उनसे हज़रत शेख़ मोहम्मद गौस ग्वालियरी को मिला था। हज़रत शेख़ कमालुद्दीन रह. उसी गौरवशाली परम्परा की एक कड़ी थे, विद्वान साधक थे।

संदर्भ :-

1. गौसी शत्तारी-गुलज़ारे अबरार एवं फ़ज़ल अहमद कृत उर्दू अनुवाद 'अजकारुल अबरार'- पृ. 258, मुख़्तार अहमद-बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा, पृ.87.
2. हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी की परम्परा का निर्वाह करने वाले समसामयिक सूफी साधक इस प्रकार थे-

   हज़रत शेख़ नूरुद्दीन ज़ियाउल्ला रह. (आगरा) अकमलुद्दीन बुरहान (बुरहानपुर ख़ानदेश) हज़रत शेख़ सदरुद्दीन मोहम्मद शम्स ज़ाकिर व शेख़ हबीब शत्तारी (बड़ौदा) हज़रत शेख़ अवेस व शेख़ इस्माइल (अहमदाबाद) हज़रत शेख़ मोहम्मद आशिक (सम्भल मुरादाबाद) मौ. अब्दुल्ला फतेह नागोरी (अजमेर शरीफ) हज़रत शेख़ हाफ़िज़ व शेख़ बहदन (जौनपुर) हज़रत शेख़ वली शत्तारी व शेख़ फिदन (बदौली) तथा हज़रत शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया, हज़रत शेख़ हाजी इब्न शेख़ इल्मुद्दीन (सरहिन्द पंजाब), हज़रत शेख़ मोहम्मद जमाली (कालपी) हज़रत शेख़ जलाल (बदौली) हज़रत शेख़ जीवा अब्दुल हयी व शेख़ शम्सुद्दीन शिराजी रह. (बीजापुर) शेख़ अहमद मुतवक्कल (उज्जैन) हज़रत शेख़ आलम व शेख़ मंझन तथा शेख़ उमर सारंगपुर में रहे हैं। ये संत शत्तारी सिलसिले के थे।

हज़रत पीर बाजूर रह.

हज़रत पीर बाजूर रह. मज़्ज़ूब रह. का जो परिचय मिलता है उससे यह पता नहीं चलता कि हज़रत कब और कहाँ पैदा हुए थे, आपके पीर मुर्शिद कौन थे और माण्डू में रहकर कितने दिनों तक समय व्यतीत किया था। यह एक जन्मजात मज़्ज़ूब साधक थे, प्राय: दिगम्बर रहा करते थे। उनकी आदतें, चमत्कार और कार्य कलाप माण्डू के जन-जन को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखती थीं। परिचय के कुछ वाक्य जो ग़ौसी शत्तारी ने लिखे हैं, अप्रत्यक्ष रूप से हज़रत के जीवनकाल के संकेतक हैं। वे एक कथानक लिखते हैं कि एक दिन लेखक (गुलज़ारे अबरार के कर्ता स्वयं ग़ौसी शत्तारी 11 रज्जब 962 हिजरी यानी 1554 ईस्वी में जन्मे) के मामू हज़रत मियाँ मियाँ जी बिन दाऊद रह. जो सुलतान नासिर शाह के राज्यकाल (1500-1510 ईस्वी) में माण्डू में जन्मे थे और अस्सी वर्ष की आयु के बाद 985 हिजरी (1577 ईस्वी) में स्वर्गवासी हुए थे तब हज़रत पीर मज़्ज़ूब बाज़ूर रह. उन्हें मिले और उनसे कुछ लेने की गरज़ से मिले। मामू साहब ने कहा उनके पास कुछ भी नहीं है। हज़रत बाजूर ने उनकी एक भी बात न मानी और कमर में बँधी हुई हमयानी (नकुलकी यानी रुपए रखने की थैली जो बेल्ट की तरह कमर में लोग बाँधे रहते थे) खोल कर उससे दो सिक्के (रुपए) निकाल लिए। उसके बाद एक सिक्का हज़रत मामूजान मियाँ मियाँ जी को हमयानी सहित वापस कर दिया। घर आकर जब मियाँ जी ने हमयानी खोली तब उसमें उन्हें उनके दोनों सिक्के मुज़फ़्फ़री (सुलतान मुज़फ़्फ़र शाह गुजराती द्वारा प्रसारित) वापस हो गए। तात्पर्य यह कि हज़रत पीर मज्जूब बाज़ूर रह. मियाँ मियाँ जी के समकालीन थे।

हज़रत ग़ौसी शत्तारी ने एक और किस्से का उल्लेख किया है जो तत्कालीन समाजार्थिक स्थिति का सूचक है। माण्डू में टाट बेचने वाला एक हिन्दू व्यापारी था, जो हज़रत के साथ बड़ी मोहब्बत रखता था। एक बार वह बहुत बीमार हुआ और हकीमों ने भी जवाब दे दिया। जब हज़रत को उसकी बीमारी का पता चला तो स्वयं उसके घर आ गए। मृत्यु का इंतजार करता हुआ व्यापारी हज़रत को देखकर प्रसन्न हो गया। हज़रत ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा तुम्हारे भाग्य में तो अभी पाँच पुत्र लिखे हुए हैं जो सलामती के साथ पैदा होंगे, लिहाज़ा अभी मरने का इरादा छोड़ दो। कहते हैं उसी समय से वह व्यापारी स्वस्थ होने लगा और तब तक जीवित रहा

जब तक पाँच पुत्र उत्पन्न नहीं हो गए।

हज़रत के परिचय में ग़ौसी शत्तारी ने एक और घटना का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि – 'बाज़ बहादुर इब्न शुजावल खाँ अफग़ान शेर खाँ के बेटे सलीम खाँ का सिपाहसालार था। हिजरी सन् कमव बैश 966 (1558 ईस्वी) को उसके दिल में यह फितूर पैदा हुआ कि ख़ुत्बा और सिक्का मेरे नाम से जारी किया जाय। इसी ख्याल से वह पीर बाजूर मज़्ज़ूब की खिदमत में आया और खुशखबरी सुनने का मुंतज़िर हुआ। अपनी मज़्ज़ूबी बड़ में हज़रत ने हाथ पर हाथ मारा और कहा– तागा दोहरा नहीं है, इसे हाथ मत लगाओ, जल्दी टूट जागा।' चुनांचा आपके फरमाने के मुताबिक ही आसमानी गर्दिश भी हुई। हज़रत के परिचय से जुड़ा उक्त कथन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विचारणीय है।

दस रबी उल अव्वल 952 हिजरी (22 मई 1554 ईस्वी) के दिन कालिंजर अभियान के दौरान एक दुर्घटना में अफग़ान शासक शेरशाह सूरी की जीवन ज्योति विलुप्त हो चुकी थी। उसके उत्तराधिकारी इस्लामशाह सूर ने बाजबहादुर (मियाँ बयाजिद) के पिता शुजात खाँ (शुजावल खाँ) को केवल सारंगपुर तथा रायसेन की जागीरें दी थीं। इसी बीच इस्लामशाह मर गया और 961 हिजरी (1553–54 ईस्वी) में मुबारिज खाँ मुहम्मदशाह आदिल या शाह अदली के नाम से शासक बना। सुलतान ने शुजात खाँ को पूरा मालवा सौंप कर सूबेदार बना दिया। शुजात खाँ ने नई व्यवस्था के तहत दौलत खाँ अजियाला को उज्जैन (जिसमें धार और माण्डू भी सम्मिलित थे), छोटे पुत्र मलिक मुस्तुफा को रायसेन तथा विदिशा और मियाँ बयाजिद (बाज़बहादुर) को हण्डिया एवं आष्टा का प्रशासक बनाया। स्वयं सारंगपुर को सम्हालता रहा। यानी माण्डू के स्थान पर राजधानी का दर्जा सारंगपुर को मिल गया। हिजरी 962 (1554–55) में शुजात खाँ भी मर गया। गृह–युद्ध में बाज़बहादुर शासक बन गया। 24 जमादी उल आखिर 968 (12 मार्च 1561) के बाद मालवा पर मुगल सम्राट अकबर के आक्रमण शुरू हो गए। सम्भवत: हज़रत से बयाजिद (बाज़बहादुर) की भेंट कभी 962 हिजरी यानी 1554–55 के आस–पास आपसी कलह के दौरान हुई होगी। यही वह समय था जब बाज़बहादुर सुलतान बनने की अभिलाषा मन में संजोए हुए था। सम्भवत: आसमानी गर्दिश का तात्पर्य मुग़लों का आक्रमण ही रहा होगा। यह ज़रूर है कि बाज़बहादुर शेर खाँ के बेटे किसी सलीम खाँ का कभी कोई सिपाहसालार नहीं रहा है।

हज़रत पीर बाज़ूर मज़्ज़ूब रह. की अनेक बातें तत्कालीन लोगों की चर्चा का विषय रही हैं। माण्डू से नालछा की ओर आने वाले मार्ग पर बनी एक दालान हज़रत का निवास स्थान थी। वहीं दरवाज़े के समीप हज़रत की मज़ार का उल्लेख है। सम्भवत: वह भंगी दरवाज़ा होना चाहिए क्योंकि आलमगीर दरवाज़ा बहुत बाद का (औरंगजेब के जमाने का) है। आज मज़ार की पहचान कर पाना कठिन ज़रूर है। कहते हैं पहले वहाँ पर ठण्डे पानी का एक स्रोत था और हज़रत की क़ब्र का मुजावर भी आने–जाने वाले यात्रियों का स्वागत उसी पानी से करता था।

हज़रत शेख़ महमूद चिश्ती रणथम्बोरी रह.

हज़रत शेख़ महमूद चिश्ती रह. एक सुयोग्य रहस्यवादी विद्वान थे। उन्होंने मरातिब वजूद, कश्फ व शाहूद की उच्च शिक्षा अपने पिता हज़रत शेख़ुल हदाद चिश्ती से प्राप्त की थी। ख़र्का ख़िलाफ़त भी उन्हीं से मिला हुआ था। स्वयं हज़रत शेख़ हदाद चिश्ती रह. की ख़र्का ख़िलाफ़त का सम्मान उनके पिता हज़रत शेख़ सद्दागंज खाँ रह. से प्राप्त हुआ था। हज़रत शेख़ सद्दा मारफ़त और खुदा शनासी के प्रख्यात ज्ञाता माने जाते थे। उनका सिलसिला हज़रत मोहम्मद शेख़ सादी तक पहुँचता है। हज़रत शेख़ मोहम्मद सादी रह. नसीरुद्दीन चराग़ देहलवी के बुज़ुर्ग ख़लीफ़ा रहे हैं। यूँ परिवार तथा पीरी मुरीदी की दृष्टि से हज़रत शेख़ महमूद चिश्ती रणथम्बोरी रह. एक सम्माननीय साधक माने जाते थे। ग़ौसी शत्तारी लिखते हैं कि मल्लू खाँ यानी सुलतान क़ादिरशाह के राज्यकाल में (1537-1542) हज़रत रणथम्बोर से मालवा चले आए थे और कुछ दिनों तक माण्डू को अपना आवास बनाए रखा। [1]

कुछ दिनों बाद हज़रत माण्डू के दक्षिण लगभग 8 कि.मी. दूर नर्मदा तट पर धरमपुरी के समीप खुजावा को अपनी साधना का केन्द्र बना लिया। [2] खुजावा-धर्मपुरी में कुब्जा संगम तीर्थ के समीप एक टीले पर अपना हुजरा बना कर वर्षों तक साधना की। खिलवत, रियाज़त और नफसकसी करते रहे। उस तपस्याकाल में किसी से कोई वस्तु ग्रहण नहीं किया। जब शासन स्तर पर हज़रत के त्याग और तपस्या की बातें ज्ञात हुईं तो अधिकारियों ने कुछ ज़मीन और गाँवों की जागीर देने का प्रयास किया। जब हज़रत ने वह आग्रह मान लिया तो शासन स्तर पर उसे शुभ संकेत समझा गया। इसके बाद हज़रत के परिवार ने भी खुजावा गाँव को जहाँ हज़रत का हुजरा था अपना आवास बना लिया। वहीं एक मस्जिद भी बनाई गई। मस्जिद के सहन में हज़रत से मिलने आने वाले दरवेशों के भी रुकने की और भोजन की व्यवस्था की गई। यह व्यवस्था खानक़ाह का ही एक रूप थी। वहीं पर ख़लीली दावत और ख़लीली मरासिम अदा किए जाने लगे। हज़रत भी उन्हीं आगन्तुकों के साथ खाना खाने लगे। इस तरह से खुजावा गाँव दरवेशों, फकीरों, मिस्किनों और सय्याह संतों का एक आदर्श पड़ाव बन गया।

खुजावा (धर्मपुरी) में साधनारत हज़रत शेख़ महमूद चिश्ती रह. ने अपना शरीर त्याग

किया। उनके पुत्र हज़रत रशीद मियाँ रह. खुजावा में उनके उत्तराधिकारी बने। हज़रत रशीद मियाँ भी एक अच्छे साधक थे। हज़रत शेख़ के विसाल (हिजरी 960 यानी 1552 ईस्वी) के बाद हिजरी 985 (1577) तक लगभग 25 वर्षों तक हज़रत शेख़ रशीद ने पिता की परम्परा को यथावत कायम रखा। स्वर्गवास के बाद उन्हें भी पिता के समीप दफन किया गया। इन संतों की मज़ारों के कारण खुजावा गाँव एक पवित्र ज़ियारतगाह बन गया। हज़रत शेख़ मियाँ के तीन पुत्र थे- हज़रत शेख़ मीरान जी, हज़रत शेख़ मंझन और हज़रत शेख़ मुबारक रह.। हज़रत शेख़ मीरान जी खुजावा गाँव छोड़कर हासलपुर चले गए और वहीं आवास बना लिया। वे स्वयं एक अच्छे साधक थे और फक्र फाक़ा तथा मज्जूबी तबियत के धनी थे। दूसरे दोनों पुत्र अपने पिता व पितामह की इबादतगाह की साज सम्हाल करते रहे। मालवा आकर बसने वाले पवित्र मुसलिम परिवारों के गौरवशाली इतिहास में शेख़ रणथम्बोरी परिवार का भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ये सब एक संस्कृति के निर्माता परिवार थे।

संदर्भ :-

1. गुलज़ारे अबरार, पृ. 230-31, मुख्तार अहमद कृत- बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा, पृ. 84-85.
2. एच.व्ही. त्रिवेदी कृत- द बिब्लियोग्राफी ऑफ मध्यभारत ऑर्कलॉजी-पार्ट-एक, पृ.-29, सेन्ट्रल इण्डिया गजेटियर सीरीज-धार स्टेट गजेटियर, पृ. 514, यहीं से वि.सं. 1278 तथा हिजरी सन् 1009 (1600 ईस्वी) के शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं।

हज़रत शेख़ प्यारा चिश्ती दानिशमंद रह.

हज़रत शेख़ प्यारा इब्न कबीर इब्न महमूद चिश्ती रह. का जन्म लखनऊ में हुआ था। किन्तु हज़रत की ख़्वाबगाह माण्डू है। वे हज़रत शाह फ़ख़रुद्दीन इब्न शेख़ हामिद के शिष्य थे। रस्मी इल्म के मामले में वे अद्वितीय प्रतिभाशाली थे। हज़रत ने सात बार हज यात्रा की थी। सातवीं बार की हज यात्रा में हज़रत अपनी बृद्धा माँ को कंधे पर बिठाकर गए थे। मातृ सेवा उनका आदर्श रहा है। मक्का मोअज्जमा से गुजरात होकर पाटन आए और पीर मुर्शिद से स्वीकृति प्राप्त कर गुजरात में निवास का मन बनाया। किन्तु वहाँ तबियत नहीं लगी और माण्डू चले आए। उस लखनवी साधक को माण्डू की आबहवा, लोगों का व्यवहार और प्यार मोहब्बत बहुत रुचिकर लगी और यहीं आवास बना लिया। [1]

ग़ौसी शत्तारी के विवरण से ज्ञात होता है कि हज़रत का माण्डू आगमन नासिरुद्दीन ख़िलजी के राज्य काल में कभी 1500 ईस्वी के आसपास हुआ था। वे लिखते हैं कि लगभग पचास वर्षों तक हज़रत माण्डू में रहे। कुल एक सौ बीस वर्ष की आयु में जब वे पर्याप्त स्वस्थ थे हिजरी सन् 963 में (1555 ईस्वी) में हज़रत का स्वर्गवास हुआ। इस आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि हज़रत का जन्म 843 हिजरी (1439-40) के लगभग हुआ रहा होगा। माण्डू आगमन भी 1505 ईस्वी (911 हिजरी) के करीब होना ज्यादा तर्कसंगत है। वैसे हज़रत ग़ौसी शत्तारी लिखते हैं कि हज़रत शुजावल खाँ (शुजात खाँ) अफ़गान के राज्यकाल तक जीवित रहे थे। हज़रत ग़ुलाम हादी के 'हफ्त गुलशन' से ज्ञात होता है कि 962 हिजरी (1554-55) में शुजात खाँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा और वह स्वर्गवासी हो गया।[2] इसके बाद सत्ता संघर्ष में बाज़बहादुर विजयी होकर माण्डू सुलतान बना। सम्भवत: हज़रत इसी बीच स्वर्गवासी हो गए। हज़रत जब तक जीवित रहे अनेक लोगों को तरह-तरह के ज्ञान की शिक्षा देते रहे। उनका पुत्र हज़रत शेख़ उस्मान भी एक विद्वान व्यक्ति था। वही उनका उत्तराधिकारी बना। हज़रत उस्मान रह. ग़ौसी शत्तारी के घनिष्ठ मित्रों में से एक थे।

संदर्भ :-

1. ग़ौसी शत्तारी कृत 'गुलज़ारे अबरार' के हवाले से लिखित परिचय 'बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा', पृ.-82-83.
2. उपेन्द्रनाथ डे- मेडिवल मालवा, पृ.-337,पादटीप-1, फरिश्ता-दो, पृ.-537-38, (विग्स-चार-पृ.-275) कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, तीन-पृ.-538 तथा निज़ामुद्दीन- तबकाते अकबरी-तीन, पृ.-421.

हज़रत क़ाज़ी मीना रह.

हज़रत क़ाज़ी मीना इब्न यूसुफ इब्न हामिद इब्न अबुल मुख़ाफर इब्न यासीन रह. में से हज़रत शेख़ यासीन रह. माण्डू सुलतान महमूद खिलजी के शासनकाल (29 शव्वाल 839 हिजरी से 19 जिल्काद 873 हिजरी यानी सोमवार 14 मई 1436 से 31 मई 1469 ईस्वी) में माण्डू के क़ाज़ी रहे थे। हज़रत मीना एक आध्यात्मिक प्रतिभा के धनी, लौकिक ज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान और महान साधक- 'यक्ता-ए-ज़माना' थे। हज़रत का जन्म यहीं माण्डू में हुआ था। पारिवारिक कलह और भाइयों के विरोध के कारण दु:खी मन से हज़रत अपना वतन छोड़कर चंदेरी चले गए थे। 1518 के बाद चन्देरी पर राजपूती दबाव बढ़ता गया। राणा संग्राम सिंह, मेदिनीराय सभी चंदेरी पर राजपूती प्रभाव के इच्छुक थे। उन्हीं दिनों चन्देरीवासी अनेक मुसलिम परिवार, साधक बुजुर्ग और विद्वान चंदेरी छोड़कर अलग-अलग स्थानों के लिए प्रयाण कर गए। हज़रत मीना भी कुछ बुज़ुर्गों के साथ चंदेरी छोड़कर छतरा आ गये और किसी प्रकार जीवन यापन करने लगे। [1] इसी बीच मल्लू खाँ क़ादिरशाह के नाम से माण्डू की सत्ता सम्हाली।

मल्लू खाँ ने गुजरात सुलतान बहादुर शाह की मृत्यु 943 हिजरी (1536-37) के तत्काल बाद 3 रमज़ान, 943 हिजरी (13 फरवरी 1537 ईस्वी) को क़ादिरशाह नाम से अपने को स्वतंत्र सुलतान घोषित कर दिया। किन्तु शीघ्र ही उसे 1539-40 में शेरशाह के आक्रमणों का सामना करने को तैयार होना पड़ा। इसी बीच 1536-39 के बीच हज़रत पुन: माण्डू आ गए। सुलतान के वज़ीर सैफ खाँ ने हज़रत को संरक्षण प्रदान किया, लेकिन सुलतान से मुलाकात का कोई आयोजन नहीं हो सका। यह वही सैफ खाँ था जो क़ादिरशाह का सच्चा सलाहकार कहलाता था। जब शेरशाह मुहर्रम 949 हिजरी (अप्रैल 1542) में गागरौन से सारंगपुर आया तब सैफ खाँ की सलाह से सुल्तान शेरशाह से मिलने सारंगपुर चला आया था। [2] ग़ौसी शत्तारी लिखते हैं कि इस कारण को लेकर हज़रत मीना दु:खी थे क्योंकि सैफ खाँ चाहता था कि हज़रत अपनी दुवाएँ उसी को देते रहें। इसीलिए शेख़ के माण्डू आगमन तक का राज़ सुलतान से छिपाकर रखा गया था। जब यह बात एक दूसरे वज़ीर को ज्ञात हुई तब उसने सारा विवरण सुलतान को बतला दिया। सुलतान ने शेख़ और सैफ खाँ दोनों को बुलाकर चर्चा की। जब सुलतान क़ादिरशाह को ज्ञात हुआ कि हज़रत शेख़ मीना के प्रपितामह हज़रत शेख़ यासीन माण्डू सुलतान महमूदशाह के

समय क़ाज़ी के पद पर रहे हैं तो वह बहुत प्रभावित हुआ और हज़रत को भी क़ाज़ी का पद देकर सम्मानित किया।

मल्लू खाँ (सुलतान क़ादिरशाह) अफ़ग़ानों के सामने टिक नहीं पाया। पहले तो शेरशाह चाहता था कि मल्लू खाँ को बंगाल स्थानान्तरित कर दिया जाय, लेकिन सारंगपुर के अफ़ग़ान शिविर से वह भाग निकला। क़ादिर शाह और नासिर खाँ प्रयास जरूर करते रहे कि मालवा पर पुनः सत्ता स्थापित कर ली जाय, परन्तु वह सफल नहीं हो सके।[3] हज़रत माण्डू में कब तक रहे और कब कहाँ उनका विसाल हुआ इसका कोई संदर्भ ज्ञात नहीं होता।

संदर्भ :-

1. ग़ौसी शत्तारी कृत- गुलज़ारे अबरार से पृ.-82, मुख़्तार अहमद कृत 'बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा' के उद्धृत संदर्भ।
2. निज़ामुद्दीन- तबकाते अकबरी-तीन, पृ.-413, डे उपेन्द्रनाथ- मेडिवल मालवा, पृ.-333-34.
3. निज़ामुद्दीन वही- पृ.-413, कानूनगो- शेरशाह, पृ.-258, डे उपेन्द्रनाथ- मेडिवल मालवा, पृ.-334-35.

हज़रत शाह ताजू इब्न शेख़ कमाल रह.

हज़रत शाहू ताजू इब्न शेख़ कमाल कुरेशी रह. एक जन्मजात सूफी हैं। इनके पिता एक अरबी मूल के यायावर संत थे और भारत भ्रमण कर रहे थे। संयोगवश जब वे राजस्थान के रणथम्बोर कस्बे में रुके हुए थे तब हिजरी 885 (1480 ईस्वी) में हज़रत ताजू का जन्म हुआ। उस वर्ष का हिजरी सन् सोमवार 13 मार्च से प्रारम्भ हुआ था। जब हज़रत की आयु पाँच वर्ष की थी तब 1485 के लगभग पिता हज़रत शेख़ कमाल कुरेशी का स्वर्गवास हो गया। ये स्वभाव से दीवाने रहा करते थे। माँ ने भी हज़रत को जन्मजात पागल समझ लिया और ध्यान देना छोड़ दिया। इसके बाद उनके रहने-सोने, खाने-पीने की व्यवस्था आसमानी तौर पर होने लगी। एक दिन हज़रत शीशा फरोशों के एक काफले के साथ हो लिए और उन्हीं के हमराही तन्हा हालात में माण्डू चले आए। वह समय माण्डू का गौरवशाली युग था और सूफी सुलतान ग़यासशाह (1469-1500) का शासन था। यद्यपि ग़ौसी शत्तारी ने उस ज़माने को सुलतान नासिरशाह का युग (1500-1510) कहा है। चूँकि हज़रत यतीम थे अतः परवरिश का उत्तरदायित्व शासन ने सम्हाल लिया।

जब हज़रत जवान हुए तब सुलतान नासिरशाह ने हज़रत का विवाह राहत-उल हयात नामक एक सुन्दर सुशील कन्या से कर दिया गया। हुआ यूँ कि हज़रत की तन्हाई का समाचार जब सुलतान ने सुना तब एक वृद्धा जो हरम की परदानशीनों को शरई तालीम दिया करती थी- राहतुल हयात उन्हीं की पुत्री थी [1] - सुलतान ने स्वयं चर्चा करके वह निकाह करवा दिया था। सुलतान ने हज़रत के खाने-पीने और जीवन यापन की भी समुचित व्यवस्था करवा दी थी। सुलतान ग़यासशाह के बाद शाही हरम की व्यवस्था गड़बड़ा चुकी थी। सुलतान नासिरशाह की मृत्यु के बाद वह और भी बदतर हो गई। पुरबिया राजपूतों ने शक्ति अर्जित कर ली थी। आए दिन राजधानी में हत्याएँ और षड्यंत्र होते रहते थे। एक दिन जब हरम में खलबली मची हुई थी हज़रत के घर नए मेहमान की आमद हुई। उस नए मेहमान (पुत्र) का नाम रखा गया, क़ुतुबुद्दीन भकरी [2]। शीघ्र ही माता राहतुल हयात का स्वर्गवास हो गया। चूँकि पिता हज़रत शाह ताजू को किसी प्रकार की कोई चिन्ता थी ही नहीं, अतः पुत्र की देखरेख का काम दरवान पेशा लोगों ने सम्हाल लिया। लेकिन हज़रत भकरी जब बड़े हुए तब पिता की सेवा में व्यस्त रहे। हिजरी 950

(1543) में हज़रत ताजू रह. लगभग 63 वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हो गए। हज़रत ने माण्डू का वैभव और पराभव दोनों ही देखा था। गुजरातियों का अधिकार, मुग़ल सम्राट हुमायूँ का कत्लेआम और फिर शेरशाह का स्वामित्व सभी कुछ उन्हीं के जीवन काल में घटित हुआ था। हज़रत के मित्रों में शेख़ हुसेन रह. मुख्य रहे हैं। अपने पुत्र भकरी के हाथों वे खाने-पीने की वस्तुएँ हज़रत हुसेन रह. के पास भिजवाया करते थे। वस्तुतः वे एक जन्मजात मज्ज़ूब थे।

संदर्भ :-

1. उपेन्द्रनाथ डे ने मेडिवल मालवा में माण्डू सुलतान गयासशाह के हरम का वर्णन करते हुए उसे एक सूफी सुलतान माना है (पृ.-246-47), उसके हरम की जानकारी के लिए देखिए- वही-पृ.-244-45, फरिश्ता-दो-पृ.-504-07, तबकाते अकबरी-तीन, पृ.-230-51, हरम में हज़ारों हाफ़िज़ा हूरें विद्यमान थीं।

2. यह घटना हज़रत क़ुतुबुद्दीन भकरी के जन्म वर्ष के लिए महत्त्वपूर्ण संकेत है। सुलतान महमूद खिलजी द्वितीय ने 1512 में मेदिनीराय पुरविया को वज़ीर बनाया। शीघ्र ही उसने शक्ति बढ़ा ली। भयभीत सुलतान उसे मरवाने का प्रयास करता रहा। 1513-14 में वह सर्वेसर्वा ही बन गया। उसके पुत्र सालिवाहन की हत्या के बाद 1515 में राजपूतों ने महल पर आक्रमण कर दिया। इधर सुलतान भागकर गुजरात मदद लेने चला गया। हाजी उद्दवीर ने जफ़रुलवलीह में यद्यपि स्पष्ट लिखा है कि मेदिनीराय ने हरम की परदानशीनों को पूरा सम्मान दिया फिर भी अव्यवस्था होनी स्वाभाविक बात थी। स्पष्टत: उन्हीं दिनों यानी 1515-16 में राहतुल हयात को पुत्ररत्न शेख़ क़ुतुबुद्दीन भकरी की प्राप्ति हुई होगी। गुलज़ारे अबरार में सुलतान के बंदी बनाए जाने की जो बात लिखी गई है वह प्रामाणिक नहीं है।

हज़रत सैयद निज़ाम माँडवी रह.

हज़रत सैयद निज़ाम माँडवी एक महान साधक किन्तु सामान्य गृहस्थ थे। बेलदारी का पेशा करके दो दर्जन से अधिक परिवार जनों का पोषण करते रहे। हज़रत एक महान साधक परिवार के रक्त सम्बन्धी थे। आपके पिता हज़रत सैयद शर्फ इब्न सैयद ग़्यास जो सुप्रसिद्ध सूफी संत हज़रत मोहम्मद गेसूदराज़ के प्रपौत्र थे। गुलबर्गा छोड़कर माण्डू चले आए थे। वह आगमन सुलतान ग़्यासशाह ख़िलजी के शासनकाल में हुआ था। [1] हज़रत के प्रपितामह सैयद मोहम्मद हुसेन गेसूदराज़ रह. का जन्म 1 रज्जब 721 हिजरी (1321 ईस्वी) के दिन दिल्ली में हुआ था। जब वे पचास वर्ष के थे तभी अपने पिता के साथ औरंगाबाद चले आए थे। लेकिन 10 वर्ष बाद पुन: दिल्ली चले आए और हज़रत ख़्वाजा नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी के मुरीद बने। जब ख़्वाजा का विसाल हुआ तो उन्होंने अपना ख़रका किसी को नहीं दिया। हज़रत गेसूदराज़ अपने अनेक अनुयायियों सहित पुन: दक्षिण चले आए और गुलबर्गा को अपना आवास बना लिया। उन्ही हज़रत के प्रपौत्र सैयद ग़्यास थे जो अपने पुत्र सैयद शर्फ के साथ माण्डू आ गए थे। वह आगमन सुलतान ग़्यासुद्दीन ख़िलजी के राज्यकाल में हुआ था।

जब सैयद निज़ाम अबोध ही थे तभी उनके पिता हज़रत सैयद शर्फ स्वर्गवासी हो गए। हज़रत जब वयस्क हुए तो हज़रत बुरहान चिश्ती की मुरीदी स्वीकार कर ली। हज़रत बुरहान चिश्ती रह. 982 से 85 हिजरी (1574–77) के बीच माण्डव में रहे थे। [2] सम्भवत: उन्हीं दिनों हज़रत ने मुरीदी ली रही होगी। सैयद निज़ाम ने बेलदारी का पेशा अपना लिया था। एक दिन वे किसी के मकान की नींव खोद रहे थे तभी उन्हें सम्पत्ति से भरा हुआ एक घड़ा मिला। हज़रत ने मकान मालिक को बुला कर कहा कि आपके स्वामित्त्व की जमीन से यह सम्पत्ति निकली है अत: इसे आप ले जाँय। मकान मालिक ने कहा कि वह आपके परिश्रम के कारण आपके भाग्य से निकली है अत: आप स्वयं ले जाँय। बहुत देर तक चर्चा के बाद हज़रत को मुक्ति मिली और उसी दिन से बेलदारी का काम बंद कर दिया। उन्होंने मन में सोचा कि आइंदा भी ऐसे लालच भरे अवसर आ सकते हैं जो इच्छा, लालच और मन के सम्बन्ध बिगाड़ देंगे। सम्भव है लालच कुछ ज्यादा शक्तिशाली बन जाय। हज़रत ने बेलदारी का मजदूरी वाला पेशा भी छोड़ दिया तथा गृहस्थी चलाने के लिए आटा और ईंधन बेचकर बसर करने लगे।

एक दिन एक परिव्राजक (सय्याह) दरवेश आया और कई सेर आटा तथा ईंधन खरीद कर एक ख़ुराक़ खाना पकाया। खाने के बाद उसने हज़रत को कहा कि अब साधना में ख़ुश्क़ की रफ्तार छोड़ दो और इश्क़ के रास्ते पर चलो। उसने उसी रात हज़रत को ज़िक्र कुर्बान की पद्धति बतलाई। इस पद्धति की रियाज हज़रत ने इतनी बढ़ा ली कि जब वे साधना में रहते तब उनके शरीर के अंग अलग-अलग हो जाते, लेकिन साधना के बाद वे पुनः आपस में जुड़ जाते थे। इसकी ख्याति राजपरिवार तक पहुँची। जब सुलतान बहादुरशाह गुजराती ने माण्डू और मालवा पर अधिकार कर लिया तब वह भी हज़रत के दर्शनार्थ आया और बहुत सी सम्पत्ति भेंट की। हज़रत ने उससे अपने पिता की क़ब्र पर जो सागर तालाब के पास थी एक आलीशान गुम्बद बनवा दिया। यहीं माण्डू में रहते हुए 19 जिडल हज 950 हिजरी (1543 ईस्वी) के दिन आपका स्वर्गवास हुआ। उस वर्ष का हिजरी वर्ष शुक्रवार 6 अप्रैल से प्रारम्भ हुआ था।

हज़रत के 24 पुत्रों में सात पुत्रों को तो बेशबा मोती कहा गया है, लेकिन सय्यद दाऊद, सय्यद हमीद, सय्यद ज़मन, सय्यद बुरहानुद्दीन, सय्यद कमाल, सय्यद सालार और सय्यद फरीद के अलावा कुछ पुत्र रस्मी इल्म के अच्छे जानकार थे और कुछ ऐसे थे जो तसव्वुफ की बारीकियों और रियाज़त के माहिर थे। वे अनेक लोगों के पीर बने थे। हज़रत के चार दामाद भी सुयोग्य साधक रहे हैं। पहले दामाद हज़रत शेख़ नसीरुद्दीन, इब्न शेख़ जलाल इब्न बुरहान चिश्ती यानी हज़रत के पीर प्रपौत्र ही थे। शेष हज़रत शेख़ जमाल, शेख़ चाँद व शेख़ शर्फुद्दीन भी अच्छे साधक थे। उनकी गौरवशाली ख्याति थी।

संदर्भ :-

1. देखिए- ग़ौसी शत्तारी कृत- गुलजारे अबरार, पृ.-209 इत्यादि तथा मुख्तार अहमद खान कृत- बुजुर्गान दीन-ए-मालवा, पृ.-80-81.
2. वही-पृ.-89-90 (बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा) हज़रत शेख़ बुरहान का जन्म गुजरात में हुआ था। शेख़ सद्रुद्दीन मोहम्मद ज़ाकिर के मुरीद थे। सन् 982 हिजरी (1574) उन्हीं के साथ ग्वालियर से माण्डू आए थे और यहीं आवास बना लिया था। हज़रत की मज़ार अजमेर में है, वहीं स्वर्गवास हुआ था।

हज़रत शेख़ हुसैन रह.

माण्डू के सूफी साधक हज़रत शेख़ हुसैन रह. वंश परम्परा में हज़रत अब्दुल्ला बियाबानी रह. के चचेरे भाई और हज़रत शेख़ समाउद्दीन देहलवी रह. के भतीजे हैं। सम्भवतः हज़रत बियाबानी के साथ ही पूरा परिवार भी माण्डू आ गया था। हज़रत का जन्म कब हुआ था और कब वे स्वर्गवासी हुए इन तिथियों का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। ग़ौसी शत्तारी ने अपने सूफी परिचय ग्रंथ 'गुलज़ारे अबरार' में हज़रत अब्दुल्ला बियाबानी के परिचय के साथ हज़रत शेख़ हुसैन रह. के सम्बन्ध में भी कुछ पंक्तियाँ ज़रूर लिख दी हैं। उनसे इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि ग़ौसी शत्तारी के समय हज़रत काफी वृद्ध हो चुके थे। वे लिखते हैं कि- 'हज़रत अब्दुल्ला बियाबानी के कोई पुत्र न था, अलबत्ता उनके चचाजाद भाइयों में एक जईफ उल अम्र शख्स थे, नाम था शेख़ हुसैन'। इन हज़रत की ग़ौसी शत्तारी के साथ विशेष कृपा दृष्टि थी। [1]

हज़रत ग़ौसी शत्तारी लिखते हैं कि हज़रत शेख़ हुसैन की स्मरण शक्ति और अभिव्यक्ति उच्च स्तरीय थी। उन्हें हज़रत शेख़ जमाली कम्बू द्वारा लिखित 'सैर-उल-आरफीन' का वह अंश जो हज़रत शेख़ समाउद्दीन देहलवी की शान में पद्यबद्ध था, अक्षरशः स्मरण था। अवसर आने पर वे उस काव्य को बड़े चाव से सुनाया करते थे। हिजरी सन् 1007 (1598 ईस्वी) में माण्डू में रहते हुए हज़रत शेख़ हुसैन स्वर्गवासी हुए। हिजरी 1007 की शुरुआत मंगलवार 25 जुलाई से हुई थी। इस प्रकार हज़रत क़ाज़ी समाउद्दीन देहलवी जुवेदतुल सादात का वंश एक प्रकार से अस्त हो गया। [2] हज़रत के घोडन नाम का एक पुत्र था जो सामान्य व्यक्ति के रूप में जीवन यापन करने लगा।

संदर्भ :-

1. ग़ौसी शत्तारी कृत 'गुलज़ारे अबरार'- पृ.-301, 'बुज़ुर्गान-दीन-ए-मालवा'- पृ.-78-79.
2. हज़रत क़ाज़ी समाउद्दीन दिल्ली में फतवानवीस थे और उन्हे 'तुग़लुक़ ख़ानी' उपाधि प्राप्त थी।

हज़रत शाह मियाँजी चिश्ती रह.

हज़रत शाह मियाँ जी चिश्ती रह. हज़रत शेख़ नजमुद्दीन इब्न शेख़ बहाउद्दीन सिद्दीकी के पुत्र और हज़रत क़ाज़ी अताउल्ला चिश्ती रह. के दौहित्र (पुत्री के पुत्र) हैं। यानी ये हज़रत माण्डू में पैदा हुए थे और यहीं मदफून हैं। हज़रत के भाई शेख़ जुम्मन भी अच्छे तपस्वी साधक रहे हैं। जब हज़रत शाह मियाँजी अवयस्क थे तभी माँ ने उनका अक़्द कर दिया। लम्बे समय तक नि:संतान रहे। बाद में एक पुत्री हुई, किन्तु वह भी जीवित न रह सकी। वृद्धावस्था तक सालिग रहे। हज़रत के ऊपर ईश्वरीय कृपा दृष्टि थी और जो कुछ अपनी ज़बान से कह देते थे वह सच हो जाता था। हज़रत के इसी गुण से जुड़ी हुई एक कहानी है। एक दिन एक दही बेचने वाली महिला सिर पर दही की मटकी रखे हज़रत के सामने से निकली। उन्होंने उसे देखा और कहा बहन अपने घड़े को औंधा कर दो और जो कुछ इसमें भरा है, उसे ज़मीन पर गिरा दो। दही बेचने वाली ने वैसा ही किया। दही के घड़े से एक मृत सर्प निकला। देखकर सब आश्चर्य चकित रह गए।

हज़रत लम्बे समय तक जीवित रहे। 13 जिलहज 918 को (1512 ईस्वी) में हज़रत का विसाल हो गया।[2] बुज़ुर्गान दीन-ए-मालवा में मुख्तार अहमद ख़ान ने भी गुलज़ारे अबरार (पृ.-182) के हवाले से इस तिथि को महमूद ख़िलजी द्वितीय के राज्यकाल की ही लिखा है। महमूद द्वितीय बंदी के रूप में जब चांपानेर में था अपने पुत्रों सहित शबे-बारात की रात को यानी 14 शाबान 937 (2 अप्रैल 1531) को मार डाला गया था। जब हज़रत का विसाल हुआ तब माण्डू सुलतान बने उसको लगभग दो वर्ष ही हुए थे। स्पष्ट है कि हज़रत के जीवन काल का अधिकांश समय सुलतान ग़्यासुद्दीन तथा नासिरशाह ख़िलजी के शासन काल के बीच व्यतीत हुआ था।

संदर्भ :-

1. ग़ौसी शत्तारी- गुलज़ारे अबरार, पृ.-182, मुख़्तार अहमद खान- बुज़ुर्गान दीन-ए-मालवा, पृ.-77-78 तथा अज़कारे अबरार, पृ.-271 इत्यादि।
2. उपेन्द्रनाथ डे- मेडिवल मालवा-पृ.-271-73. हज़रत की मृत्यु का समय माण्डू में गृह कलह और षड्यंत्रों के कारण एक अशान्त समय था। एक साथ दो-दो सुलतान गद्दी के दावेदार थे, महमूद द्वितीय और मुहम्मद। महमूद किले से बाहर था और मुहम्मद किले के भीतर। 6 जनवरी 1512 के दिन महमूद विजयी हुआ। इसी समय मेदिनी राय को वज़ीर बनाया गया।

हज़रत शेख़ नूरुल्ला इब्न शेख़ जुम्मन रह.

हज़रत शेख़ नुरुल्ला इब्न शेख़ जुम्मन सिद्दीकी का परिचय गौसी शत्तारी ने हज़रत शाह मियाँजी चिश्ती रह. के साथ जोड़कर लिखा है और उसे एक सूफी परिवार के परिचय का स्वरूप दे दिया है। हज़रत शेख़ नुरुल्ला इब्न शेख़ जुम्मन इब्न नजमुद्दीन इब्न हज़रत शेख़ बहाउद्दीन सिद्धीकी का परिवार एक सूफी साधक परिवार था। परिवार की पवित्रता का आभास उस लोक विश्रुत कथानक से भी होता है कि जब हज़रत क़ाज़ी अताउल्ला रह. को अपनी पुत्री के निकाह के लिए सुयोग्य वर की जरूरत हुई तो स्वयं हज़रत पैगम्बर मोहम्मद सा.(सल.) ने क़ाज़ी को स्वप्न में बतलाया था कि पुत्री का वर शेख़ बहाउद्दीन सिद्दीकी रह. माण्डू में है। उसी निकाह के बाद हज़रत शेख़ नजमुद्दीन रह. का जन्म हुआ था। शेख़ नजमुद्दीन के दो पुत्र थे- हज़रत शेख़ मियाँजी और शेख़ जुम्मन रह.। हज़रत शेख़ जुम्मन शेख़ मियाँजी के छोटे भाई थे लेकिन महान साधक भी थे। शेख़ जुम्मन को भी स्वर्गवास के बाद उनके भाई के हमसीना दफ्न किया गया। हज़रत शेख़ नुरुल्ला जो शेख़ जुम्मन के पुत्र थे उन दोनों भाइयों के सज्जादा नशीन बने। कुछ दिन बाद 941 हिजरी (1534 ईस्वी) को हज़रत का भी स्वर्गवास हो गया। वह हिजरी सन् सोमवार 13 जुलाई से प्रारम्भ हुआ था।

हज़रत नुरुल्ला रह. की एक मात्र वारिस थीं- केवल चार महीनों की पुत्री बीवी ख़दीजा। बीवी ख़दीजा को सूफी साधना पद्धति वंश परम्परा से प्राप्त हुई थी। जब वे बड़ी हुईं तो निकाह हुआ और शेख़ क़ुतुबुद्दीन जैसा पुत्र प्राप्त हुआ। हिजरी सन् 1002 (1593 ईस्वी-उस वर्ष हिजरी सन् सोमवार 17 सितम्बर से प्रारम्भ हुआ था) में शेख़ क़ुतुबुद्दीन भी इस संसार से विदा हो गए। उस समय बीवी ख़दीजा की आयु 59 वर्ष की थी। सहारे की तलाश में अपने पिता का स्मरण कर ख़दीजा बीवी माण्डू आ गईं। वे हज़रत गौसी शत्तारी इब्न हसन इब्न मूसा शत्तारी से घरौपा रखती थीं अत: उन्हीं के पास आकर रुकीं। उनके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए गौसी शत्तारी ने लिखा है कि- इसमें शक नहीं कि आरफात के गिरोह में इस तरह की साबित कदमी जवां मर्दी इसार और कनात के साथ मिस्ल ख़दीजा बीवी के दसवीं सदी हिजरी में कोई नहीं था'। [1]

संदर्भ :-

1. इन्टरनेट की एक वेवसाइट पर सूफी महिला संतों की संक्षिप्त जानकारी और संदर्भ उपलब्ध हैं, किन्तु भारत की महिला सूफियों पर वहाँ भी कोई जानकारी नहीं दी गई। डॉ. नहिद आनगा जो इन्टरनेशनल सूफी एसोसिएशन की सह संचालक और सूफी वूमेन आर्गनाइजेशन की जन्मदात्री हैं, इस ओर सराहनीय कार्य कर रही हैं।

हज़रत अब्दुल्ला बियाबानी रह.

हज़रत अब्दुल्ला बियाबानी माण्डू के अद्वितीय साधकों में माने जाते हैं। वंश परम्परा में वे हज़रत शेख़ समाउद्दीन देहलवी के साहबजादे हैं। कुछ लोग सम्भवत: भ्रमवश उन्हीं को हज़रत अजयपाल जोगी उर्फ अब्दुल्ला बियाबानी मान लेते हैं। वे हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती रह. के ख़लीफ़ा कहे गए हैं। उनका चिल्ला अजमेर शरीफ से 11 कि.मी. दक्षिण पश्चिम दूर भग्नावशेष के रूप में आज भी ज़ियारतगाह माना जाता है। क़ादरी सिलसिले में भी इसी नाम के एक संत हुए हैं जिनका विसाल 4 जीउलकदा 447 हिजरी (1055 ईस्वी) को हुआ था। माण्डू वाले हज़रत बियाबानी एक अलग साधक हैं। हज़रत माण्डू कब आए यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हैं। यही हाल उनकी विसाल तिथि का है। [1]

ऐसा प्रतीत होता है कि जब 1399 में दिल्ली पर तैमूरलंग का आक्रमण हुआ और कुछ दिनों बाद माण्डू में स्वतंत्र मुस्लिम सल्तनत कायम हो गई तब अनेक सूफी संतों, मशायिक्रों और विद्वानों ने दिल्ली छोड़ दी तथा अन्य स्थानों को चले गए। उसी दौरान कभी हज़रत अब्दुल्ला भी अपने परिजनों के साथ मालवा आकर माण्डू में बस गए। यहीं रहकर उन्होंने अपनी कठोर साधना प्रारम्भ की। हज़रत को साधना के लिए जनसंकुल नगर के बजाय एकान्त बियाबान वन कान्तर पसंद आया। माण्डू के आस-पास घाटी के जंगल इस हेतु उपयुक्त लगे। हज़रत ने हर मौसम को खुले आसमान के नीचे बिताया। लोगों से मिलना-जुलना बंद कर दिया और जब भूख लगती तो कभी-कभी वनोपज व शाक-पात खा लिया करते। हज़रत को पूरा क़ुरान पाक हिफ़्ज़ था। प्रतिदिन वे उसका एक सम्पूर्ण पाठ पढ़ जाते थे। धीरे-धीरे हर रोज़ वन्य प्राणी प्रात:काल उन्हें सलाम करने आने लगे। वे आकर हज़रत के इर्द-गिर्द बैठ जाते थे और हज़रत का इशारा पाकर चले जाते थे। कई वर्षों तक हज़रत ने इसी प्रकार की कठोर साधना में स्वयं को लगाए रखा। जब समय पूरा हुआ तब स्वर्गवासी हुए। हज़रत का मज़ार माण्डू दुर्ग से दक्षिण पश्चिम लगभग 11 कि.मी. दूर छतारी (काली बावड़ी) नामक गाँव में स्थित है। माण्डू में और भी ऐसे कठोर साधक संत हुए हैं जिनमें हज़रत शेख़ नुरुद्दीन अहमद फरीदी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। [2]

संदर्भ :-

1. हज़रत बियाबानी के परिचय के लिए देखिए- ग़ौसी शत्तारी-गुलज़ारे अबरार, पृ.-301 (अज़कारे अबरार से उद्धृत) तथा बुज़ुर्गान दीन-ए-मालवा, पृ.-78-79.
2. वही-पृ.-164 तथा वही-पृ.-75.

हज़रत शेख़ नुरुद्दीन अहमद रह.

हज़रत शेख़ नुरुद्दीन रह. हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर के प्रपौत्रों में से हैं, जो माण्डू सुलतानों के समय पटियाली से मालवा आए थे। [1] बाबा फरीद के एक पुत्र हज़रत शेख़ निज़ामी पटियाली में रहते थे। सम्भवत: हज़रत उन्ही के वंशज होंगे। मालवा में फरीदी संतों की एक परम्परा रही है और बाबा फरीद के वंशज यानी हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के पुत्र-पौत्र तथा उनके परिवार के अन्य सगे सम्बन्धी धार के निवासी थे। गुलज़ारे अबरार के लेखक जिन्होंने 998-1012 हिजरी (1589-1603 ईस्वी) के बीच मुगल सम्राट अकबर के शासन काल में अपनी रचना पूर्ण की थी, उन्होंने धार में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के वंशजों से भेंट की थी, ख़ानदान के यश के लिए दुआ मांगते रहे। यानी निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि हज़रत शेख़ नूरुद्दीन अहमद रह. के रक्त सम्बन्धी मालवा के धार नगर में सम्माननीय जीवन जी रहे थे। लेकिन इन हज़रत ने साधना के लिए धार नगर या बस्ती के बजाय माण्डू के बियाबान वन कान्तर को अपनी आराधना के लिए चुना। [2]

माण्डू के जंगल की एक पहाड़ी गुफा को हज़रत ने अपनी तपस्थली बनाया जो निर्जन बियाबान और खूंखार जानवरों से भरी हुई जगह थी। वहाँ रहकर उन्होंने अपनी इन्द्रिय कामनाओं पर विजय प्राप्त की, जितेन्द्रिय बने। प्राय: वे ईश्वर से लौ लगाए बैठे रहते थे और सांसारिक दृष्टि से बहुत ही कम समय के लिए लौकिक बन पाते थे। खूंखार और विषधर जानवरों की उपस्थिति तक का आभास वे भूल चुके थे। ईश्वर उनका रक्षक था अत: उन वन्य प्राणियों से उन्हें किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचता था। जब वे ध्यान से अलग हटते थे और लोग पूछते थे कि रक्त पिपासु, दरिन्दे, जीवजन्तु उन्हे नुकसान क्यों नहीं पहुँचाते, तब वे बड़ी सरलता और स्वाभाविकता के साथ कह देते थे कि जब किसी को ईश्वर का साथ मिल जाता है तब तमाम बहशी दरिन्दे भी अनुशासित होकर व्यवहार करने लगते हैं। ये हज़रत हर समय सुक्र की हालत में रहा करते थे। बुज़ुर्गान दीन-ए-मालवा के लेखक मुख़्तार अहमद का अपना मत है कि हज़रत का मज़ार भी अशरफी महल क़ब्रस्तान में है। वैसे आज पहचान का संकट है।

संदर्भ :-

1. मुख़्तार अहमद 'बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा'-पृ.-75 में हज़रत का माण्डू आगमन मालवा के ख़िलजी सुलतानों के समय का स्वीकार किया गया है।
2. ग़ौसी शत्तारी-(गुलज़ारे अबरार, पृ.-164) ने हज़रत के माण्डू आगमन और स्वर्गवास की कोई तिथि नहीं दी है।

हज़रत शाह नजमुद्दीन शाह क़लंदर नजमुल सादात रह.

हज़रत सैयद निज़ामुद्दीन इब्न सैयद मुबारक गजनवी के पुत्र नजमुल सादात, हज़रत शाह नजमुद्दीनशाह क़लंदर रह. एक अद्वितीय साधक और विद्वान थे। हज़रत के पितामह हज़रत निज़ामुद्दीन रह. का विसाल 13 रबी उल आखिर 622 हिजरी (1225 ईस्वी) को हो चुका था, जिनकी मज़ार हौज़ शम्शी के पूर्व दिल्ली में स्थित है। हज़रत का जन्म कब हुआ था यह तो ज्ञात नहीं है किन्तु यह ज़रूर लिखा हुआ है कि बहुत लम्बी आयु के बाद 852 हिजरी (1448 ईस्वी) में वे माण्डू के समीप नालछा में स्वर्गवासी हुए थे। वहीं नालछा में तालाब के किनारे हज़रत की मज़ार का मक़बरा आज भी ज़ियारतगाह के रूप में विख्यात है। कहते हैं माण्डू आने के बाद हज़रत ने विवाह भी कर लिया था।[1]

हज़रत का बाल्यकाल कहाँ, कैसे और किसके संरक्षण में व्यतीत हुआ इसका कोई प्रामाणिक लेखा-जोखा उपलब्ध नहीं होता। हज़रत को युवावस्था में रहस्यवाद समझने की जिज्ञासा हुई। इसके लिए वे सर्वप्रथम हज़रत निज़ामुल अरफा के मुरीद बने। लम्बे समय तक हज़रत अरफ़ा के मार्गदर्शन में कश्फ और मारिफत को समझने का प्रयास किया, किन्तु संतुष्ट नहीं हुए। और आगे अध्ययन के लिए पीर की आज्ञा से वे रोम चले गए और वहाँ हज़रत शेख़ ख़िज्र रोमी की सेवा में रहे। हज़रत शेख़ ख़िज्र रोमी रह. क़ुतुब उल-औलिया ख़्वाजा बख़्तियार काकी रह. के ख़रक़ापोशों में से एक थे। वहाँ उनसे हज़रत ने तसव्वुफ़ की नई ऊँचाईयों को समझा और ज्ञानार्जन जारी रखा। इसके बाद हज़रत कलंदरों की परम्परा में शामिल हो गए। स्वभावतः हँसमुख और निर्भीक स्वभाव के कारण क़लंदरों के बीच वे बड़े प्रसिद्ध हो गए।

क़लंदरिया सिलसिले के सम्बन्ध में दो मान्यताएँ हैं। कुछ लोग मानते हैं कि क़लंदर शाही सूफी साधना पद्धति हज़रत अज़ीज़ मक्की से जारी हुई थी। वे हज़रत ख़िज्र रोमी के ख़लीफ़ा यानी शाह नजमुद्दीन शाह क़लंदर के गुरुभाई थे। यह परम्परा पीछे की ओर हज़रत शाह क़ुतुबुद्दीन बुनियाद लकी से हज़रत शेख़ अब्दुल सलाम व हज़रत ख़्वाजा अब्दुल क़ुद्दूस गंगोही तक पहुँचती है। यह परम्परा रोम में प्रचलित रही। भारत में यह सिलसिला हज़रत सर्फुद्दीन बू अलीशाह क़लंदर पानीपती रह. से प्रारम्भ हुआ था। हज़रत पानीपती हज़रत शेख़ शिहाबुद्दीन

आशिक़ खुदा के ख़लीफ़ा थे, और वे ख़िलाफ़त क्रम में हज़रत शेख़ इमामुद्दीन अब्दाल के ख़लीफा थे। उन्हें हज़रत बदरुद्दीन ग़ज़नवी से, उन्हें हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. से ख़िलाफ़त मिली हुई थी। हज़रत सर्फुद्दीन बू अलीशाह क़लंदर पानीपती रह. का विसाल 13 रमज़ान 724 हिजरी (1323) में हुआ था और मज़ार पानीपत में है। हज़रत शाह नजमुद्दीन शाह क़लंदर रह. सिलसिले की साधना पद्धति के पूर्ण ज्ञाता और स्वयं पूर्ण क़लंदर थे।

प्रवास करते हुए जब हज़रत माण्डू आए तब यह नगर अपने साधक सूफियों और विचारकों की भूमि बन चुका था। हर व्यक्ति और साधक ने हज़रत को प्यार और सम्मान दिया। माण्डू के प्राकृतिक परिवेश से भी हज़रत बड़े प्रभावित हुए और नालछा क़स्बे को अपना आवास बना लिया। हज़रत की अनेक करामातें भी चर्चा का विषय रही हैं। एक दिन रोशनी के लिए हज़रत के हुजरे में तेल नहीं था। ख़ादिम ने तेल की जगह पानी डाल कर दीपक जला दिया। ऐसा अक्सर होता रहा किन्तु उस रहस्य को ख़ादिम पचा नहीं पाया और लोगों को वह मालूम पड़ गया। इसके बाद से पानी का जलना बंद हो गया। ऐसी मान्यता है कि यदि चमत्कार का राज खुल जाता है तो वह स्वत: बंद हो जाता है। जौनपुर के महान सूफी हज़रत शाह क़ुतुबुद्दीन बशीर की ख्याति नजमुल सादात हज़रत शाह नजमुद्दीनशाह क़लंदर रह. के कारण ही थी। आज भी ग़ौसुल दहर हज़रत क़लंदर रह. के अनुयायी उत्तरी भारत के अनेक स्थानों पर विद्यमान हैं। नालछा में जुमेरात को हज़रत की मज़ार पर अनेक लोग सभी सम्प्रदायों के आते रहते हैं।

संदर्भ :-

1. देखिए- अज़कारे अबरार, पृ.-153, मुख़्तार अहमद खान-बुज़ुर्गान दीन-ए-मालवा, पृ.-67-68.

हज़रत शेख़ ताहिर अल्लामा अस्त्र रह.

हज़रत शेख़ ताहिर रह. युग विभूति पुरुष, लौकिक विषयों और तसव्वुफ की बारीकियों के ज्ञाता और विश्लेषक, महान शिक्षक तथा इस्लामी कानून के बहुत बड़े लब्ध प्रतिष्ठ समीक्षक रहे हैं। बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा के लेखक मुख़्तार अहमद ने इनके ज्ञान की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उन्हें फ़ाजिल मोतबर अल्लामा अस्त्र कहा है।[1] उन्हें मालवा के राज परिवार का शिक्षक होने का सम्मान प्राप्त है। यद्यपि इतिहासकार उनके परिचय के सम्बन्ध में मौन हैं और प्रामाणिकता के लिए कोई कथन या संदर्भ उद्धृत कर पाना कठिन है। मुख़्तार अहमद ने लिखा है कि- 'इसी फ़ाज़िल शाह ताहिर की राय से सुलतान नासिरुद्दीन ख़िलजी बिन ग़्यासुद्दीन ख़िलजी सुलतान मालवा व बुरहान निज़ाम शाह व बहादुर शाह गुजराती से सुलह हुई थी।'[2]

जहाँ तक उक्त कथन की प्रामाणिकता का प्रश्न है, अवयस्क सुल्तान निज़ाम शाह बहमनी माण्डू सुलतान महमूद ख़िलजी प्रथम का समकालीन था और तब संघर्ष में मध्यस्थता के लिए किसी ताहिर शाह ने कोई प्रयास नहीं किया था। इसी प्रकार नासिरशाह के समय गुजरात का सुलतान महमूद बेगड़ा था बहादुर शाह नहीं। नासिरशाह के समय हज़रत शेख़ ताहिर के प्रयासों से बुरहान निज़ाम शाह और बहादुर शाह गुजराती के साथ मालवा सुलतानों से सुलह का कोई कारण या प्रश्न ही उपस्थित नहीं हुआ था।[3] माण्डू सुलतान नासिरशाह 27 रबी उल सानी 906 से रमजान 916 तक यानी 20 नवम्बर 1500 से दिसम्बर 1510 तक मालवा का शासक रहा। बहादुर गुजराती 26 रमजान 932 हिजरी (6 जुलाई 1526 ईस्वी) कोई 16 वर्ष बाद गुजरात के सिंहासन पर बैठा था। इस प्रकार नासिरशाह के समय का उक्त कल्पित कथन स्वीकार करने योग्य प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार 'बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा' में हज़रत का परिचय लिखते हुए कहा गया है कि- 'हज़रत शाह ताहिर रह. बादशाह माँडव के फ़ाज़िल थे'। जहाँ तक 'बादशाह' उपाधि का प्रश्न है वह भारतीय मुस्लिम शासकों द्वारा बाबर के समय 1526 के बाद से अपनाई गई। इसके पहले सभी शासक सुलतान कहलाते रहे। माण्डू में अलग से कोई बादशाह हुआ ही नहीं जिसके फ़ाज़िल हज़रत शेख़ ताहिर रह. रहे हों।

जहाँ तक बुरहान निज़ामशाह और बहादुरशाह गुजराती तथा सुलतान नासिरुद्दीन खिलजी के बीच सुलह का प्रश्न है उसमें से यदि नासिरशाह का नाम छोड़ दिया जाय तो एक सम्भावना जरूर शेष रह जाती है। बहादुर शाह ने मालवा जीत लिया था और 12 शाबान 937 हिजरी (31 मार्च 1531 ईस्वी) के दिन उसके नाम का ख़ुतबा पढ़ा गया था। लेकिन सुलतान को आशंका थी कि शक्तिशाली अमीर उसे चैन के साथ शासन नहीं करने देंगे। इधर अहमद नगर का निज़ामशाह भी अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ा रहा था और खानदेश को वहाँ के राजवंश को उससे बहुत बड़ा खतरा था। इसी उद्देश्य से वह शीघ्र ही फारुकी राजधानी बुरहानपुर आया और बुरहान निज़ामशाह को पुरानी संधियों का स्मरण कराकर अपनी तरफ मिला लिया। फरिश्ता मानता है कि खानदेश के शासक बुरहान निज़ामशाह ने भी इस भय से कि कहीं मुगल उस पर आक्रमण न कर दें उसने बहादुर शाह की सेवा स्वीकार कर ली। सम्भव है हज़रत शेख़ ताहिर ने उस समय कोई मध्यस्थता की रही हो।[4]

एक और संदर्भ है जो जानने योग्य है। जब माण्डू सुलतान महमूद खिलजी प्रथम ने नवम्बर 1466 में एलिचपुर पर धावा बोला तब उसके सेनापति मक़बूल खाँ, मासिर-उल-मुल्क़ तथा राय रायान राय शिवदास ने पूरा क्षेत्र तहस-नहस करके उजाड़ डाला था। इन्हीं दिनों महमूद खिलजी ने दक्षिण के महान सूफी साधक हज़रत शेख़ ज़ियाउद्दीन बियाबानी रह. से भेंट की। शेख़ ने चर्चा के दौरान महमूद की आलोचना की कि- 'अच्छा तो यह होता कि मुसलिम रियासतें आपस में लड़ने के बजाय लोकहित में अपनी शक्ति लगातीं। अभी भी मुसलिम समाज के लिए अनेक सुधारों की आवश्यकता है जो उनके जीवन स्तर को सुधार सके।' सुलतान ने कहा कि मैं भी यही चाहता हूँ लेकिन दक्षिण के सुलतान नहीं मानते। यदि आप प्रवास करें तो वह सम्भव है। इसके बाद शेख़ ने हज़रत क़ाज़ी लादन ताहिर और इसाक ताहिर को एक पत्र लिखकर दक्षिण के उलेमा और मशायिखों को शांति तथा सामाजिक सुधारों के लिए आग्रह किया। हज़रत गवान ने अपने ग्रंथ 'रियाज़-उल-इंशा' में लिखा है कि इसके बाद बहमनी सुलतान मुहम्मद शाह और माण्डू सुलतान के मध्य शांति संधि हुई।[5] ये शेख़ ताहिर मौलाना ताहिर हैं या नहीं स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार हज़रत ताहिर का परिचय अभी तक खोज का विषय है। बुज़ुर्गान दीन-ए-मालवा के लेखक ने हज़रत शेख़ ताहिर को ग्रंथों का रचयिता लिखा है, लेकिन वे ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते।[6] हज़रत कब और कहाँ स्वर्गवासी हुए यह भी ज्ञात नहीं है। हज़रत धर्मशास्त्र, शरीयत व गणित, ज्योतिष, काव्यशास्त्र आदि अनेक विषयों के प्रकाण्ड विद्वान थे। लेकिन वे कहाँ के, किस कुल के और किस सिलसिले के थे, यह पता नहीं चलता।

संदर्भ :-

1. मुख़्तार अहमद- बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा, पृ.-77.
2. वही-पृ.-77.
3. उपेन्द्रनाथ डे- मेडिवल मालवा- में नासिरशाह विषयक अध्याय में ऐसी किसी घटना का कोई उल्लेख तक

नहीं करते। देखिए- पृ.-249-266, चैप्टर-दसवाँ। महमूद खिलजी द्वितीय के समय भी ऐसा कुछ नहीं हुआ था।

4. वही-पृ.-162-67 एवं चैप्टर-ग्यारह - महमूद खिलजी द्वितीय-पृ.304-09.
5. वही-पृ.-164-65.
6. मुख़्तार अहमद-वही-पृ.-77.

हज़रत अब्दुल्लाशाह शत्तारी रह.

भारत में इस्लामी तसव्वुफ (रहस्यवाद) के देदीप्यमान नक्षत्र, विद्वान साधक, लेखक और चिन्तक हज़रत अब्दुल्ला शाह शत्तारी के कारण सूफी परम्परा के इतिहास में मालवा के नगर माण्डू का नाम सदैव ही रोशन रहेगा। हज़रत एक युग विभूति थे, साधना पद्धतियों के समन्वयकर्ता और शत्तारी सिलसिले के अद्वितीय प्रवक्ता थे, समष्टि की व्यष्टि थे। हज़रत मालवा कब आए, ग़ौसी शत्तारी ने उनके परिचय में तिथि का स्पष्ट उल्लेख न करते हुए एक संकेत दिया है कि जब सुलतान ग़यासुद्दीन ने चित्तौड़गढ़ को घेर रखा था तब हज़रत बंगाल से चलकर चित्तौड़ आ गए थे और जब सुलतान ने चित्तौड़गढ़ जीत लिया तब आग्रहपूर्वक वह हज़रत को माण्डू लाया। [1]

जहाँ तक ग़्यासशाह द्वारा चित्तौड़ विजय का प्रश्न है, फारसी इतिहासकार मौन हैं और राजस्थानी इतिहासकार उसे स्वीकार नहीं करते। [2] यदि उक्त संघर्ष की सम्भावित पृष्ठ भूमि पर भी दृष्टिपात किया जाय तो यह ज़रूर है कि सुलतान ने चित्तौड़ पर अभियान किया था, किन्तु बिना किसी उल्लेखनीय उपलब्धि के वापस आ गया था। ग़ौसी शत्तारी इतिहास लेखक नहीं थे अत: उनके कथन को भी अन्य प्रामाणिक साक्ष्यों एवं उल्लेखों के अभाव में पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जा सकता। चित्तौड़ अभियान की पृष्ठभूमि इस प्रकार है कि चित्तौड़ (मेवाड़) और माण्डू (मालवा) के कट्टर प्रतिद्वन्द्वी शासक क्रमश: राजा कुम्भा की उसके पुत्र उदय सिंह ने 1468 में हत्या कर दी और महमूद खिलजी 1469 में स्वर्गवासी हो गया। चित्तौड़ की स्थिति अशान्त हो गई। उसके छोटे भाई रायमल ने विद्रोह कर दिया और 1473 में पराजित उदयसिंह भागकर मालवा आ गया। इसके बाद सुलतान ग़्यासशाह ने उदयसिंह के पक्ष में चित्तौड़ का घेरा डाल दिया। यह घटना 1474-75 के आसपास हुई। राजस्थानी स्रोत मानते हैं कि सुलतान पराजित हुआ। [3] असलियत क्या थी यह खोज का विषय है। इसी अभियान के समय हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी को आग्रह करके माण्डू लाया गया। यानी हज़रत 1474-75 के लगभग मालवा आ गए।

हज़रत ग़ौसी शत्तारी ने लिखा है कि माण्डू में रहते हुए उस महान साधक ने 890 हिजरी (1485 ईस्वी) में इस नश्वर संसार से बिदा ले ली। उस वर्ष हिजरी सन् मंगलवार 18 जनवरी से

प्रारम्भ हुआ था। यानी लगभग दस वर्षों तक हज़रत मालवा की राजधानी माण्डू में रहे। हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी रह. का जन्म कब और कहाँ हुआ था यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता। हज़रत का लक़ब भी आला था। उनके पिता का नाम हज़रत हिसामुद्दीन था जिनका वंश परिचय- हिसामुद्दीन इब्न रशीदुद्दीन इब्न ज़ियाउद्दीन, इब्न नजमुद्दीन इब्न जमालुद्दीन इब्न शेख़ुल शयूख हज़रत शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी तक पहुँचता है। पीरी-मुरीदी में इस खानदान का सम्बन्ध हज़रत शेख़ मोहम्मद आरिफ, शेख़ मोहम्मद आशिक़, शेख़ ख़ुदाकुली मादरुल लहरी, हज़रत शेख़ अबुल हसन इश्क़ी, मौलाना अबुल मुज़फ़्फ़र तुर्क, शेख़ अबू यज़ीद अहराबी, शेख मोहम्मद मग़रबी से आगे सुलतानुल इरफा हज़रत शेख़ बायज़ीद बुस्तामी तक जुड़ा हुआ था। समग्र रूप से हज़रत ईरान तूरान के इश्क़िया और रोम के बुस्तामिया सिलसिले की पृष्ठभूमि से सम्बद्ध रहे हैं।

हज़रत स्वयं साधना पद्धति में महान सिलसिलों की तरीक़त के ज्ञाता थे। माण्डू में रहते हुए हज़रत ने 'लताइफ ग़ैबिया' नामक ग्रंथ की रचना की और सुलतान ग़यासुद्दीन को समर्पित किया था। उस ग्रंथ में सूफी साधना पद्धतियों का विवरण और समीक्षा है। माण्डू आगमन से पूर्व हज़रत दरवेशों के क़ाफिले के साथ शाही लिवास में यात्राएँ किया करते थे। दरवेश भी सैनिक वर्दी में झण्डा उठाए नक्कारे बजाते हुए चला करते थे। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में हज़रत ने निशापुर के हज़रत शेख़ मुज़फ़्फ़र क़तानी ख़िलवती रह. से तरीक़त सीखी थी। वे तभी बुख़ारा से निशापुर चले आए थे। हज़रत को जो तरीकत शेख़ मुज़फ़्फ़र ने सिखलाई थी वह उन्हें पीरी परम्परा में क्रमश: शेख़ इब्राहीम, उन्हें शेख़ निज़ामुद्दीन हुसैन, उन्हें शेख मुहम्मद ख़िलवती से और हज़रत ख़िलवती को हज़रत शेख़ नजमुद्दीन कुबरा से प्राप्त हुई थी।

हज़रत अब्दुल्ला रह. निशापुर ने भ्रमण करते हुए ख़ुरासान, इराक़ और आज़र बाईजान होकर भारत आए। जहाँ जाते थे वहाँ के मशायिख़ों के नाम खुला पैग़ाम भेजते थे कि या तो कोई विद्वान साधक उनकी साधना पद्धति से अधिक उपयुक्त पद्धति बतलावे या फिर उनसे आकर सीखे। भारत भ्रमण करते हुए जब वे बंगाल पहुँचे तब हज़रत शेख़ मोहम्मद ओला बंगाली ने उन्हें खुशसानी साधक मान कर कोई महत्त्व नहीं दिया। इसके बाद वे राजस्थान की ओर लौट आए। इसी बीच औला बंगाली को स्वप्न में उनके पिता ने आगाह किया कि जिस धर्मध्वज साधक अब्दुल्ला शत्तारी को तुमने नकार दिया है वही तुम्हारा पीर बनने योग्य है। इसके बाद हज़रत ओला बंगाली शेख़ अब्दुल्ला शत्तारी को खोजते हुए माण्डू आए। यहाँ उस खुरासानी सूफी से बैत हुए। ख़र्का ख़िलाफ़त देकर हज़रत ने शीघ्र ही उन्हे बंगाल रवाना कर दिया। यह घटना 1475 के बाद 1480 के आसपास हुई होगी।

हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी रह. सिलसिले के पितृ पुरुष रहे। हज़रत के दूसरे मुरीद शेख़ हाफ़िज़ शत्तारी जौनपुरी हैं। वहीं जौनपुर के दूसरे संत हज़रत शेख़ बदहन (बुद्धन) शत्तारी को हज़रत का वंशज माना जाता है। स्वर्गवास के बाद हज़रत शत्तारी को माण्डू के अशरफी महल में

दफनाया गया था। आज भी वहाँ उनकी मज़ार विद्यमान है।

संदर्भ :-

1. ग़ौसी शत्तारी- गुलज़ारे अबरार, पृ.-136, मुख़्तार अहमद- बुज़ुर्गान-दीन-ए-मालवा, पृ.-72-75.
2. उपेन्द्रनाथ डे- मेडिवल मालवा-पृ.-223-226 - 'रिलेशन विद मेवाड़'.
3. कविराज श्यामलदास कृत- 'वीर विनोद'-एक, पृ.-338, ओझा हिस्ट्री ऑफ प्रतापगढ़ स्टेट, पृ.-55, श्यामलदास रायमल रासो के आधार पर लिखता है कि ग़्यासशाह ख़िलजी ने भरसक प्रयास किए और किले पर कई बार घात लगाया लेकिन सफल नहीं हुआ। बल्कि, पराजित होकर मालवा भाग गया और अन्य सेनापति ज़फ़र खाँ ने मोर्चा सम्हाला।

हज़रत क़ाज़ी अताउल्लाह चिश्ती क़ुदसरा रह.

मान्यता है कि माण्डू के सूफी संत हज़रत अताउल्ला चिश्ती रह. का जन्म दिल्ली में हुआ था, किन्तु हज़रत के पीर कौन थे इस तथ्य का कहीं कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। उन्होंने हर प्रकार की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी और युवावस्था में दिल्ली छोड़कर गुजरात को अपना आवास बना लिया। वहीं हज़रत का विवाह भी हुआ। कुछ दिन बाद वे हज यात्रा पर चले गए। जब लौटकर आए तब उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया और वे एक छोटी बच्ची छोड़ गईं। हज़रत ने करीब दस वर्षों तक उस बच्ची का पालन पोषण किया। एक दिन स्वप्न में हुजूर ख़तिमुन नबुव्वत हज़रत मोहम्मद सल. वसल्लम ने सूचित किया कि आपकी पुत्री का निकाह शेख़ बहाउद्दीन सिद्दीक़ी से होगा जो माण्डू में गौशनशीन हैं। हज़रत अताउल्ला रह. दामाद की तलाश में माण्डू आए और काफी खोजबीन के बाद हज़रत शेख़ बहाउद्दीन सिद्दीक़ी का पता चला। पुत्री का निकाह करने के बाद हज़रत ने भी माण्डू के एक कोने में अपना आवास बना लिया। [1]

जीवन के अंत तक हज़रत माण्डू में ही रहे और यहीं स्वर्गवासी हुए। हज़रत शेख़ बहाउद्दीन को इनकी पुत्री से हज़रत शेख़ नजमुद्दीन जैसा साधक पुत्र प्राप्त हुआ। शेख़ नजमुद्दीन को भी हज़रत शाह मियाँ जी चिश्ती जैसा पुत्र मिला। यानी हज़रत की पुत्री से सूफी साधकों की एक संतति परम्परा चली। [2]

संदर्भ :-

1. अज़कारे अबरार, पृ.-271, मुख़्तार अहमद कृत- बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा, पृ.-71-72.
2. वही-पृ.-182 तथा वही.-पृ.-68-69 : तिथिक्रम के लिए शाह मियाँजी चिश्ती का परिचय महत्त्वपूर्ण है। हज़रत क़ाज़ी अताउल्ला रह. के परिचय को शाह मियाँजी चिश्ती के परिचय के साथ जोड़कर देखने पर ही परिचय की पूर्णता प्राप्त हो सकती है।

हज़रत शेख़ उल इस्लाम चायलदा रह.

हज़रत चायलदा युग पुरुष साधक सूफी थे। हज़रत का जो परिचय मोहम्मद ग़ौसी शत्तारी ने लिखा है वह संक्षिप्त, किन्तु महत्त्वपूर्ण है। हज़रत का जन्म स्थान औछा (तत्कालीन जौनपुर राज्य) है, किन्तु जीवन का उत्तरार्ध मालवा (माण्डू) में व्यतीत हुआ। वे हज़रत महान सूफी साधक राजू क़त्ताल के ख़लीफ़ा थे। माण्डू के एक और महान संत हज़रत नजमुद्दीन शाह क़लंदर भी राजू क़त्ताल रह. की सेवा में रह चुके थे। हज़रत राजू क़त्ताल रह. सोहरवर्दी सिलसिले के संत थे और उनकी पीरी मुरीदी परम्परा हज़रत मख़दूम जहाँनियान कुद. तक पहुँचती है। हज़रत चायलदा एक एकान्त साधक थे और साधना के लिए वीरान वियाबान जंगली क्षेत्र पसंद करते थे। कहते हैं खूंखार जानवर तक प्रतिदिन सलाम के लिए हज़रत की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे। [1]

हज़रत चायलदा का परिचय लिखते हुए मुख़्तार अहमद खान ने उनके प्रथम बार (हज यात्रा पर जाते हुए) माण्डू आगमन की तिथि 810 हिजरी (1407) जो बुधवार 8 जून से प्रारम्भ हुई थी मानी है। लिखा है कि जब सुलतान होशंगशाह ग़ौरी का शासन था तब हज़रत मालवा आए और महमूद इब्न ख़ाने जहाँ मलिक मुग़ीस का आतिथ्य स्वीकार किया। महमूद के मन में सुलतान बनने की इच्छा बलवती थी। हज़रत ने भोजन किया और आशीर्वाद दिया कि मालवा की शाही सल्तनत महमूद के अलावा अन्य तीन उत्तराधिकारियों तक उसी के पारिवारिक स्वामित्व में रहेगी। महमूद ख़िलजी ने आग्रह किया कि हज यात्रा से लौटकर यदि हज़रत माण्डू आवें तो बड़ी कृपा होगी। आशीर्वाद के अनुरूप महमूद सुलतान बन गया। हज़रत भी जब हज से लौटकर मालवा (माण्डू) आए तो उनका बड़ा सम्मान किया गया। सुलतान महमूद ख़िलजी ने हज़रत के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया, रुकने की सम्मानजनक व्यवस्था की गई और शेख़ उल इस्लाम बनाया गया। [2]

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो उक्त तिथि 810 हिजरी (1407 ईस्वी) ठीक प्रतीत नहीं होती। वास्तव में यह तिथि दिलावर खाँ ग़ौरी की मृत्यु के बाद उसके पुत्र होशंगशाह ग़ौरी (अत्ता खाँ) के राज्यारोहण की है जब तत्काल बाद उसे गुजरात सुलतान ने बंदी बना लिया था। सुलतान महमूद ख़िलजी का जन्म गुरुवार की रात में 28 शव्वाल 806 हिजरी (8 मई 1404 ईस्वी) को हुआ था। [3] यानी 1407 में सुलतान केवल तीन वर्ष का अबोध शिशु था जिसकी

सुलतान बनने की महत्त्वाकांक्षा का पता ही नहीं लगाया जा सकता था। सम्भवत: यह तिथि सुलतान महमूद ख़िलजी के राज्यारोहण सोमवार 29 शव्वाल 839 हिजरी (14 मई 1436) से कुछ समय पूर्व की होना चाहिए। डॉ. उपेन्द्र नाथ डे ने भी इस प्रश्न को केवल इतना लिखकर छोड़ दिया है कि गुलज़ारे अबरार (चमन-तीन, तज़किरा शेख़ुल इस्लाम-12) के अनुसार भी जब हज़रत ने माण्डू की भूमि को अपने आगमन से पवित्र किया तब सुलतान महमूद बहुत ही कच्ची उम्र के थे।[4] हज़रत जब हज यात्रा से लौटकर आए तब महमूद ख़िलजी सुलतान बन चुका था। राज्य प्राप्ति की वह घटना 1436 की थी। यानी हज़रत 1407 से 1436 तक हज यात्रा पर रहे हों यह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

हज़रत जब मालवा आए तब शेख़ चैन लाद जैसे सूफी साधकों की खानक़ाहें प्रसिद्ध हो चुकी थीं।[5] महमूद ख़िलजी हज़रत शेख़ुल इस्लाम चायलदा के प्रति अतीव आदर रखता है। उसने अपनी पुत्री का विवाह भी शेख़ से कर दिया। दहेज में अनेक वस्तुएँ दीं और आवास के लिए सुविधाजनक भवन बनवा दिए। शेख़ ने जरूरी चीजें रखकर अनेक प्रकार की भेंटें आम जनता को बांट दीं। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय माण्डू में रहकर जाहिरी और बातनी इल्म देने में निकाला। उनके प्रयासों से माण्डू विद्या का केन्द्र बन गया। जीवन के अंतिम दिनों में सुलतान ने अर्ज़ किया कि जैसा सान्निध्य आप से अभी तक मिलता रहा वैसा ही सान्निध्य इस दुनिया से जाने के बाद भी मिलता रहे, इसलिए विसाल के बाद एक ही जगह क़ब्रें बन सकें तो ज्यादा उपयुक्त होगा। जब हज़रत का विसाल हुआ तो उन्हें अशरफी महल में दफ्न किया गया। जब सुलतान की जीवन लीला समाप्त हुई तो उसे भी हज़रत शेख़ चायलदा की मज़ार के आगे दफ्न किया गया और ताबीज़ बनवा दिए गए। एक दिन सुलतान महमूद ने स्वप्न में अपने उत्तराधिकारी पुत्र ग़यासशाह को हिदायत दी कि मेरी लाश को निकालकर पीर मुर्शद के कदमों तले दफ़्न करें। तमाम विचार विमर्श के बाद यह तय किया गया कि हज़रत चायलदा की क़ब्र सुलतान की कब्र के बराबर में बना दी जाय। हज़रत के पुत्र शेख़ बदहा जो सज्जादानशीन थे यह आग्रह किया कि एक रात की मोहलत दी जाय तत्पश्चात् जैसा हो किया जाय। कहते हैं उसी रात हज़रत की क़ब्र स्वत: खिसककर सुलतान महमूद की क़ब्र से आगे चली गई। आधी रात के समय क़ब्र के खिसकने की आवाज़ मकबरे के मुजावरों ने भी सुनी। जब प्रात:काल यह समाचार लोगों ने सुना तो आश्चर्यचकित रह गए।

संदर्भ :-

1. फ़ज़ल अहमद- अज़कारुल अबरार (मौलाना ग़ौसी शत्तारी के गुलज़ारे अबरार का उर्दू तर्जुमा)-पृ.-294. मुख़्तार अहमद खान कृत- बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा, पृ.-66-67.
2. बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा, पृ.-66-67.
3. उपेन्द्र नाथ डे- मेडिवल मालवा, पृ.-23 एवं 90.
4. वही-पृ.-90, पादटीप-4.
5. वही-पृ.-84, पादटीप-3.

हज़रत मख़दूम क़ाज़ी इसहाक रह.

हज़रत क़ाज़ी मख़दूम इसहाक रह. भी माण्डू सुलतानों के समय मालवा का गौरव रहे, और सुलतान महमूद स्वयं उनका मुरीद रहा। हज़रत के प्रारम्भिक जीवन परिचय के संबंध में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती। यह ज़रूर कहा जा सकता है कि 1399 में तैमूर के आक्रमण के बाद जब दिल्ली सल्तनत का वैभव बिखर गया तब बहुत से मशायिक़ रत्न और विद्वान उलेमा राज्याश्रय की तलाश में या शांति की खोज में साधना की खातिर स्वतंत्र मुस्लिम रियासतों की ओर- जौनपुर, गुजरात, मालवा या बुरहानपुर की ओर चले आए।[1] हज़रत मख़दूम क़ाज़ी इसहाक रह. भी ऐसे ही एक संत थे जो मालवा सल्तनत की राजधानी माण्डू आ गए थे। 8 जिलहिज्जा 838 हिजरी (5 जुलाई 1435) को सुलतान होशंगशाह का स्वर्गवास हो गया। बड़ी कशमकश के बीच उसके पुत्र ग़जनी खाँ को 11 जिलहिज्जा 834 हिजरी (8 जुलाई 1435) सुलतान बनाया गया, किन्तु वह अप्रैल 1436 में ही मर गया और हज़रत शेख़ क़ाज़ी मख़दूम बुरहानुद्दीन के शाप से ग़ौरी राजवंश का अंत हो गया।[2] और महमूद खिलजी 29 शव्वाल 839 हिजरी (14 मई 1436) को मालवा सुलतान बना।[3] यह सुलतान हज़रत मख़दूम क़ाज़ी इसहाक का मुरीद था।

हज़रत शेख़ उल इस्लाम चायलदा जब हज यात्रा पर जा रहे थे, तब 810 हिजरी (1407) में माण्डू आए थे। जब वे हज से वापस आए तब भी माण्डू आए और यहीं रुक गए। सुलतान महमूद बाद में उनका भी मुरीद बना। ऐसा लगता है कि हज़रत मख़दूम क़ाज़ी बुरहानुद्दीन रह. के बाद जब हज़रत मख़दूम क़ाज़ी इसहाक को महत्त्व मिला तब सम्भवत: 1435 के लगभग महमूद उनका मुरीद बन गया होगा। यद्यपि प्रामाणिक आधार तो नहीं है लेकिन सम्भावना यह भी है कि हज़रत क़ाज़ी इसहाक हज़रत क़ाज़ी बुरहानुद्दीन के सज्जादानशीन या रक्त सम्बन्धी हों। मख़दूम उपनाम तथा क़ाज़ी का पद उन्हें वंशानुगत रूप से प्राप्त हुआ हो। ग़ौसी शत्तारी इस सम्बन्ध में मौन है।[4]

गुलज़ारे अबरार में ग़ौसी शत्तारी ने हज़रत क़ाज़ी मख़दूम इसहाक रह. का जो परिचय लिखा है उससे ज्ञात होता है कि हज़रत को समय-समय पर हुए सूफी साधकों का विस्तृत ज्ञान

था और स्वयं वे चिश्ती सिलसिले के संत थे। एक बार सुलतान महमूद से चर्चा में उन्होंने कहा था कि आत्मा अमर है और ईश्वर के उपासकों का जीवन ईश्वरीय देन है, उन्हें मृत्यु से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। उनकी मृत्यु एक प्रकार से मकान बदलने जैसी बात है। मृत्यु के बाद भी वे जीवितों के समान रहते हैं। यानी उनकी अलौकिक शक्ति ईश्वरीय है, हक़ीक़ी हयात से उनकी ज़िन्दगी चलती रहती है। इस कथन पर महमूद ख़िलजी आश्चर्यचकित रह गया था और विश्वास नहीं किया था।

हज़रत के स्वर्गवास के सम्बन्ध में भी ग़ौसी शत्तारी ने एक कहानी दी है। जब हज़रत का स्वर्गवास हुआ तब सुलतान महमूद अन्यत्र व्यस्त था और शेख़ के अंतिम संस्कार में शामिल नहीं हो सका था। जब वह वापस आया तो व्यथा के साथ आग्रह किया कि हज़रत की क़ब्र को खोलकर शेख़ के अंतिम दर्शन कराए जावें। अनिच्छा होते हुए भी रात में मशाल जलाकर क़ब्र को खोला गया। इसी बीच मशाल से एक शोला गिरा जो कफन पर पड़ने वाला था। अचानक क़ब्र से एक हाथ उठा और शोले को बाहर कर दिया। सुलतान को शेख़ का कथन याद आया और अपनी नासमझी पर पश्चाताप हुआ। कहते हैं हज़रत का मज़ार दारुल हदीस अशरफ़ी महल में है।

हज़रत मख़दूम क़ाज़ी इसहाक रह. एक महान साधक संत, धर्म तथा लौकिक ज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान व व्याख्याता तथा पवित्र सूफी थे। उनके कारण माण्डू और मालवा की ख्याति विश्रुत हुई। वे एक युग पुरुष चिश्ती थे।

संदर्भ :-

1. मेडिवल मालवा-पृ.-65-66.
2. ग़ौसी शत्तारी- गुलज़ारे अबरार-पृ.-212.
3. फरिश्ता दो-पृ.-479, ब्रिग्स-4, पृ.-196 में महमूद की राज्यारोहण तिथि 16 मई 1435 लिखी गई है, जबकि कैम्ब्रिज हिस्ट्री-तीन, पृ.-353 में हेग ने वह तिथि रविवार 13 मई 1436 मानी है।
4. ग़ौसी शत्तारी- गुलज़ारे अबरार-पृ.-213, यह ज़रूर है कि वर्णन में दोनों संतों को क्रमश: रखा गया है।

हज़रत मौलाना इल्मुद्दीन शरफजहाँ कादरी रह.

हज़रत ग़ौसी शत्तारी कृत गुलज़ारे अबरार के उर्दू अनुवाद अज़कारे अबरार में हज़रत मौलाना इल्मुद्दीन शरफजहाँ क़ादरी रह. का कोई विस्तृत परिचय नहीं मिलता, किन्तु एक महत्त्वपूर्ण संकेत यह ज़रूर है कि हज़रत ने सुलतान ग़यासुद्दीन ख़िलजी के राज्यकाल में माण्डू आकर दर्स की बुनियाद रखी थी। [1] ये हज़रत ऐरजी क़ादरी के उस्ताद माने जाते हैं। यह ऐरजी क़ादरी कौन थे स्पष्ट नहीं है। एरज के हज़रत शेखुल इस्लाम मियाँ चेन लाद तथा हज़रत यूसुफ बदहा एरजी अपने ज़माने के यानी माण्डू सुलतान महमूद ख़िलजी प्रथम के समय के महान और प्रभावशाली संत रहे हैं। [2] यदि हज़रत युसुफ़ बदहा रह. को हज़रत इल्मुद्दीन शरफजहाँ क़ादरी का शिष्य मान लिया जाय तो कहा जा सकता है कि जब वे माण्डू आए तब पर्याप्त आयु वाले बुज़ुर्ग रहे होंगे। एरच कस्बा चन्देरी के समीप मालवा सुलतानों, कालपी के शासकों और जौनपुर के शर्की सुलतानों के बीच शक्ति परीक्षण का कारण रहा है। [3]

राजनीतिक पृष्ठभूमि में देखा जाय तो जौनपुर के सूफी संत हज़रत सैयद अजमल सद्रे इश्तिगारत रह. का प्रभाव एरज के संतों पर था जो राजनीतिक मामलों में मध्यस्थता कर सकते थे। सम्भव है कि उन्हीं दिनों हज़रत इल्मुद्दीन शरफजहाँ क़ादरी रह. जौनपुर से एरज और फिर माण्डू आए हों। हज़रत इल्मुद्दीन रह. अपने नाम के अनुरूप ज्ञान के भण्डार थे। बहुत दिनों तक मक्का मदीना में रहकर रहस्यवाद और हदीस का अध्ययन किया था। कहते हैं जब हज़रत माण्डू आए तब यहाँ के अनेक लोगों ने उनसे ज्ञान प्राप्त किया। ये हज़रत सैयद बहाउद्दीन दक्खिनी के पास भी रहे थे और तरीकत सीखी थी। सूफी रहस्यवाद के अलावा उन्हें कीमिया सीथिया तथा हिकमत का बहुत अच्छा ज्ञान था और अनेक महत्त्वपूर्ण नुस्खे उन्हें मालूम थे। हज़रत का विसाल कब और कहाँ हुआ यह ज्ञात नहीं है। प्रसंगवश एक प्रश्न सोचने लायक है कि कहीं कीमियागीरी के नुस्खों का जो संकलन माण्डू सुलतान नासिरशाह खिलजी के समय हिन्दी में लिखा गया था वह कहीं इन्ही हज़रत की रचना तो नहीं है। ग्रंथ का प्रारम्भ इस प्रकार है– 'श्री कर्तन्नम: ॥ उस्ताद की बंदगी करी कराही। सारे शास्त्र कौ सार लेइ कराही श्री कंकाली असौ नाम एसे योगीश्वर रसायन काक सेव करता है। यह शास्त्र अनुभव सिद्ध है, यह शास्त्र बड़े–बड़े पातिसहुं लायक है। षलची वंश उद्योत कार के पातिसाह शिरोमणि सुलतान श्री नासीर साह आप

अनुभव करण के ताई ओर रसराज शुद्ध करणै कै ताई पारा के अठारह संस्कार जुदे जुदे करणै की जुगति फुरमाई है।'

उक्त पुष्पिका का प्रथम वाक्य– 'श्री कर्तन्नम:' (वैभव के कर्ता को सलाम) लगभग उसी प्रकार है जैसे बुरहानपुर और असीरगढ़ की मस्जिदों के संस्कृत शिलालेख में 'श्री सृष्टि कर्तृन्नम:' (दुनिया बनाने वाले को सलाम) प्राप्त होता है। किसी देवता की स्तुति के बजाय अल्लाह का स्मरण भी बतलाता है कि उक्त 'कंकाली' ग्रंथ का रचयिता कोई मुसलमान ही होना चाहिए।[5] हज़रत सैयद महमूद रह. भी एक कीमियागर सूफी थे किन्तु अज़कारे अबरार के अनुसार उनका समय नासिरशाह से पहले का है। हज़रत मौलाना इल्मुद्दीन शरफजहाँ क़ादरी रह. का विसाल कब हुआ और उनकी मज़ार कहाँ है, यह सब कुछ अज्ञात है।

संदर्भ :-

1. अज़कारे अबरार–पृ.–130.
2. गुलज़ारे अबरार, पृ.–236, उपेन्द्र नाथ डे– मेडिवल मालवा, पृ. 144–46.
3. डे–वही–पृ.–52–53 व 141–44.
4. ख़ान बहादुर मौलवी मो. फसीहउद्दीन कृत– 'दशर्की मान्यूमेन्टस ऑफ जौनपुर,'–पृ. 3, 25 (फुटनोट).
5. डे–वही–पृ.–369–70, इस ग्रंथ के सम्बंध में देखिए– श्री पी.के. गोडे का लेख– अनल्स ऑफ भण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट–बारह–(1930–31) पृ.–289–291, 'द डेट ऑफ कंकाली ग्रंथ एट्रिव्यूटेड टु नासिरशाह' तथा डॉ. शर्मा– डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग ऑफ द गवर्नमेन्ट कलेक्शन, भ.ओ.रि.इं., जिल्द–16, पार्ट–1, पृ.–50–51.

हज़रत मौलाना मोहम्मद अमीन रह.

हज़रत मौ. मोहम्मद अमीन रह. के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं होती। 'गुलज़ारे अबरार' के अनुवाद 'अज़कारे अबरार' में जो कुछ लिखा गया है वह भी बहुत कम है। हज़रत सूफी साधना पद्धति 'तरीक़त' के अच्छे ज्ञाता और 'हक़ीक़त' के कुशल व्याख्याता थे।[1] पीरी-मुरीदी की दृष्टि से वे हज़रत शेख़ जेनुद्दीन ख्वानी के मुरीद थे, जिन्होंने हदीस का गहन अध्ययन ज्ञान हज़रत मौलाना जलालुद्दीन क़ानी से प्राप्त किया था। ऐसी मान्यता है कि हज़रत मौलाना जलालुद्दीन क़ानी ने वह ज्ञान स्वप्न के माध्यम से हज़रत शाह मर्दान शेर यजदान अमीरुल मोमेनीन हज़रत अली हैदर बिन अबी तालिब करम अल्लाह वजह से संशोधित कर रक्खा था। इनके हदीस ग्रंथ में इस लाह के लिए किसी एक पृष्ठ पर एक ऐसा चहीला था, जिसे देख लेने के बाद उन्हें ज्ञान की अजस्त्र धारा मिल जाती थी। कहा जाता है कि हज़रत मौलाना जलालुद्दीन प्रतिदिन उसी नुस्खे को देख लिया करते थे, जिससे उन्हें एक अद्‌भुत प्रवक्ता की दृष्टि मिल जाती थी। वही नुस्खा हज़रत ने अपने मुरीद मौलाना मोहम्मद अमीन रह. को बतला रक्खा था।

हज़रत मौलाना मोहम्मद अमीन रह. उस अद्‌भुत चहीला (पुस्तक चिह्न) के प्रभाव से बड़े ख्याति प्राप्त मौलाना बने। कहते हैं कुछ दिनों बाद वह चहीला हज़रत के पास से चोरी चला गया जिसके कारण उन्हें घोर निराशा और दु:ख हुआ। कथानक है कि उस घटना का ज्ञान अदृश्य रूप से चहीले के निर्माता हज़रत अली को हुआ और उन्होंने रोम के किसी पाक व्यक्ति को ख्वाब में बतलाया कि किताब मिशकत मौलाना मोहम्मद अमीन माँडवी के पास से गुम हो गई है। अत: तुम अपनी मिशकत भेजकर हज़रत के शोक को दूर करो। उस व्यक्ति ने ख्वाब के आधार पर अपने पास की दुर्लभ प्रति जिसमें वह चहीला भी था मौलाना को माण्डू के पते पर भिजवा दी। उस मिशकत और चहीले को पाकर हज़रत पुन: प्रसन्न हो गए। स्पष्ट है कि हज़रत मौलाना मोहम्मद अमीन रह. के पास ज्ञान की दुर्लभ पुस्तकें और उनके संदर्भ थे और हज़रत अली रजि. की अलौकिक कृपादृष्टि तथा आशीर्वाद उन्हें प्राप्त था। वे ज्ञान के सागर थे, अटूट श्रद्धावान थे और साधक भी थे।

संदर्भ :-

1. सूफी मत में बंदे और ख़ुदा का एकीकरण है। ख़ुदा से मिलने के लिए बंदे को अपनी रूह का परिष्करण करना पड़ता है। उसके लिए चार दशाएँ मानी गई हैं- शरीयत, तरीकत, हक़ीक़त और मारिफत। मारिफत में रूह 'बक़ा' की अवस्था प्राप्त करने के लिए 'फना' हो जाती है। फना के लिए इश्क़ जरूरी है। 'बक़ा' में रूह अपने को 'अनलहक़' की अधिकारिणी बना सकती है। तरीकत और हक़ीक़त आत्मा के परिष्करण के सोपान हैं।

हज़रत सैय्यद महमूद रह.

हज़रत ग़ौसी शत्तारी ने गुलज़ारे अबरार में हज़रत सैयद महमूद रह. का जो परिचय लिखा है वह ऐतिहासिकता की दृष्टि से सुनी सुनाई गल्प के समीप है। वे लिखते हैं कि हज़रत सैयद महमूद रह. सुप्रसिद्ध सूफी संत समा-ए-खुर्द के पुत्र हैं। हज़रत सैयद समा-ए-खुर्द हज़रत सैयद समा-ए-बुज़ुर्ग के पुत्र और हज़रत नासिर मिस्त्री के प्रपौत्र हैं।[1] ये नासिर मिस्त्री हज़रत दुल-नून मिस्त्री (विसाल 861 ईस्वी) की वंश परम्परा से हैं या नहीं इसका पता नहीं चलता। हज़रत दुल-नून मिस्त्री बदख़शां में रहे वहीं उनके प्रपौत्र हज़रत शेख़ अब्दुल वाहिद की हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर से भेंट हुई थी। हज़रत सैयद समा-ए-खुर्द सम्भवत: किसी समय माण्डू आ गए थे। हज़रत ग़ौसी शत्तारी मानते हैं कि सैयद महमूद रह. का जन्म और स्वर्गवास दोनों माण्डू में ही हुए थे। हज़रत ने दौलत और सैनिक का पेशा छोड़ दिया था, और तमाम उम्र दरवेशी और रियाज़त में गुज़ारते रहे। उनका कथन था कि हज़रत के प्रपितामह सैयद नासिर मिस्त्री एक दौलतमंद सूफी थे। हज़ारों आदमी और ग़ुलाम उनकी सेवा में रहकर काम करते रहते थे। उनकी मेहनत से जो कुछ अर्जित करते थे, उसे अपनी ख़ानक़ाह में आने वाले सूफियों तथा दरवेशों के लिए खर्च कर देते थे, लेकिन ग़ुलामों की माली हालत पर ध्यान नहीं देते थे।

एक दिन नासिर मिस्त्री ने एक गुलाम की बातें सुनी जो अपने हमराज से कह रहा था कि हमारे सैयद ग़ुलामों की मेहनत से अर्जित आय से ख़ानक़ादारी करते हैं, लेकिन हम परेशान हैं, बाल-बच्चों को खिला-पिला तक नहीं सकते। हज़रत को यह बात दिल में चुभ गई क्योंकि ग़ुलाम की शिकायत जायज़ थी। इस बात से दुखी होकर एक दिन सैयद नासिर ने क़लंदराना सूरत बनाई और हिन्दुस्तान की ओर चले आए। चलते हुए हज़रत हिसार फ़िरोज़ा पहुँचे। हिसार फ़िरोज़ा में सैयद की भेंट एक दरवेश से हुई जो कीमियागर था। नासिर मिस्त्री दरवेश की सेवा में लग गए और कीमियागीरी सीख ली। दरवेश ने भी हज़रत के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और कहा कि अपने वतन वापस लौट जाओ, गुलामों को आज़ाद करके कीमियागीरी के हुनर से ख़ानक़ाह चलाओ। हज़रत नासिर ने वैसा ही किया और अपने पुत्र को भी कीमियागर बना दिया। कुछ दिन बाद हज़रत मिस्त्री ने अपने पुत्र समा-ए-बुज़ुर्ग को दरवेश की

सेवा में भेजा। लेकिन, तब तक दरवेश का हिसार फ़िरोज़ा में स्वर्गवास हो चुका था। लेकिन, हज़रत समा कीमियागीरी जानते थे, अतः उसके सहारे सूफियों और दरवेशों की एक जमात खड़ी कर ली और उन्हें सैनिक वेशभूषा से सुसज्जित किया। उन सबके साथ हज़रत समा माण्डू आए।

ग़ौसी शत्तारी ने लिखा है जब हज़रत समा-ए-बुज़ुर्ग माण्डू आए तब राय विरायी क़िले का हाकिम सम्भवतः क़िलेदार था। वह दरवेशी सैनिकों का सामना नहीं कर पाया और क़िला छोड़कर दक्षिण की ओर भाग गया। उन दरवेश सैनिकों ने माण्डू में क़िले के भीतर पहली बार इस्लाम का परचम फहराया। सम्भवतः सूफी साधना पद्धति की नींव डाली। स्पष्टतः यह घटना माण्डू सुलतानों के पहले की या फिर दिल्ली सल्तनत काल से पहले की होनी चाहिए। राय विरायी का कोई ऐतिहासिक संदर्भ नहीं मिलता। सम्भवतः उस दरवेश जमात ने माण्डू को अपना आवास बना लिया होगा और हज़रत समा-ए-खुर्द का जन्म भी यहीं माण्डू में हुआ होगा। क्योंकि युवा होते ही हज़रत समा-ए-बुज़ुर्ग यात्रा पर चल पड़े थे। ऐसे सैनिकवेश दरवेशों की परम्परा रही है। सम्भव है ऐसा ही कोई समूह हो जो धार में चालीस पीरों के कथानक का आधार बना हो। हज़रत अब्दुल्ला सत्तारी भी इसी प्रकार सैनिक वेशभूषा में रहा करते थे। गौसी शत्तारी ने स्पष्ट लिखा है कि- 'हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी रह. के जिस्म पर सुलतानी लिबास और हमराही सैनिकों के जिस्म पर फौजी वर्दी होती थी। इस शान के साथ अलम उठाते थे और नक्कारा बजाते थे। इसी तमराक़ के साथ सय्याही करते थे।' ऐसे सूफी प्रायः ख़ुरासान और पर्सिया से आया करते थे।[2] हज़रत सैयद महमूद रह. जो माण्डू में जन्में थे- मालवा के उन प्राचीनतम सूफियों में गिने जा सकते हैं जिन्होंने माण्डू को अपना आवास बनाया था।

हज़रत सैयद महमूद इब्न समा-ए-बुज़ुर्ग को मालवा के प्रथम सूफी संतों में माना जाय जो मालवा में रहे तो एक ऐतिहासिक व्यतिक्रम उपस्थित होता है। यूँ देखा जाय तो 1233-34 में सुलतान इल्तुतमिश ने उज्जैन तथा विदिशा लूट लिया था।[3] जयसिंह परमार के समय (1254-70) परमारों की राजधानी धार से माण्डू चली आई थी।[4] इसके बाद परमार राजा अर्जुनवर्मन द्वितीय (भोज तृतीय) शासक बना। कहा जाता है उन्हीं दिनों मालवा में सूफी संतों का आगमन शुरू हुआ। शाह चंगल आदि की कहानियों को भी उन्हीं दिनों का माना जाता है।[5] सम्भावना ज़रूर की जा सकती है कि हज़रत समा-ए-बुज़ुर्ग का दरवेशी क़ाफिला भी उन्हीं दिनों मालवा आया रहा होगा। उनके पुत्र-पौत्र भी मालवा के निवासी बन गए।

संदर्भ :-

1. फ़ज़ल अहमद-अज़कारे अबरार (मौलाना मोहम्मद ग़ौसी कृत- गुलज़ारे अबरार का उर्दू अनुवाद), मुफ़ीद-इ-आम प्रेस आगरा- हिजरी 1326 (1908), पृ.-381 इत्यादि।
2. गुलज़ारे अबरार-पृ.-136 इत्यादि, मुख़्तार अहमद- बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा, पृ.-72-73.
3. इलियट-दो, पृ.-324-25, ब्रिग्स-फरिश्ता-एक, पृ.-211 तथा कैम्ब्रिज हिस्ट्री-तीन, पृ.55.

4. एपि. इण्डिका-19, पृ.-49-50, श्लोक 7 -
   ततोभ्युदयमासाथ जैत्रसिंह रविर्ण्णवः।
   अपिमण्डपमध्यस्थं जयसिंह महीतपत॥ 7॥
5. जरनल ऑफ बाम्बे ब्रांच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी-21, पृ.-362-63, सियारुल औलिया-पृ.-198, निज़ामी कृत- लाइफ ऐण्ड टाइम्स ऑफ शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर-पृ.-59 इत्यादि।

हज़रत शेख़ मुहम्मद बिन इब्राहीम मुलतानी रह.

हज़रत शेख़ मुहम्मद बिन इब्राहीम मुलतानी रह. का जन्म ख़िलजी सुलतान ग़यासुद्दीन के राज्यकाल में माण्डू में हुआ था। इनके पिता हज़रत शेख़ इब्राहीम रह., हज़रत शेख़ बहाउद्दीन मुलतानी के मुरीद और ख़लीफ़ा थे। हज़रत शेख़ मुहम्मद की शिक्षा पिता की देखरेख में माण्डू में हुई थी। वे किसके शिष्य थे और उनका सम्बन्ध किस सिलसिले से था यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है। ऐसा लगता है कि हदीस और तफसील का ज्ञान हज़रत ने अपने वालिद से ही प्राप्त किया होगा। हज़रत ग़ौसी शत्तारी ने शेख़ मुहम्मद रह. के सम्बन्ध में एक लोक विश्रुत कथानक लिखा है कि- जब हज़रत माँ के पेट में थे तब एक दिन एक झगड़ालू स्वभाव की महिला ने इनकी माँ के साथ बदसलूकी की और एक पत्थर मारकर शारीरिक चोट पहुँचाई। उसी समय से उस महिला के शरीर में असह्य वेदना प्रारम्भ हुई। हज़रत इब्राहीम रह. ने ध्यान करके देखा और बताया कि जिसे चोट लगी है उसके गर्भ में क़ुतुब ज़माने का हमल है। ज़रूरी है कि मारने वाली महिला माफी मांगे और पेट पर पानी उतारकर पिए और दर्द के ऊपर लगावे। वैसा ही किया गया और दर्द से तत्काल राहत मिली। 'क़ुतुब ज़माने का हमल' एक द्व्यर्थक शब्द है जो मर्तबे की दृष्टि से दोनों पर यानी हज़रत इब्राहीम रह. और उनके पुत्र हज़रत शेख़ मुहम्मद रह. का परिचायक है। [1]

जब हज़रत इब्राहीम दक्षिण चले गए तब हज़रत शेख़ मुहम्मद रह. माण्डू में ही रहे, लेकिन कुछ दिनों बाद वे भी बीदर चले गए। इसी दौरान हज़रत शेख़ की ख्याति यानी उनकी बुज़ुर्गी और ईश्वर भक्ति की चर्चाएँ पूर्वी भारत और खुरासान तथा कंधार तक पहुँची। अनेक लोग झुण्ड के झुण्ड हज़रत के दर्शनार्थ उनके आस्ताने पर आने लगे। यानी माण्डू में जन्में, पले और बढ़े शेख़ मुहम्मद बिन इब्राहीम रह. एक महान साधक तपस्वी थे। गुलज़ारे अबरार में हज़रत ग़ौसी शत्तारी ने उनका परिचय माण्डू का संत मान कर ही किया है।

संदर्भ :-

1. ग़ौसी शत्तारी- गुलज़ारे अबरार का उर्दू अनुवाद, पृ.-112.

   चूँकि हज़रत का जन्म माण्डू सुलतान ग़यासशाह ख़िलजी का राज्यकाल (22 जिल्क़ाद, 873 हिजरी यानी 3 जून 1469 से 9 रमज़ान 906 हिजरी या 29 मार्च 1501 ईस्वी) माना जाता है। यह समय मालवा में सूफी चिन्तन का स्वर्ण काल रहा है। स्वयं सुलतान एक सूफी शासक था।

हज़रत शेख़ यूसुफ़ बदहा ऐरजी रह.

हज़रत शेख़ यूसुफ़ बदहा ऐरजी रह. माण्डू के संत कहे जाने की अपेक्षा एरच कस्बे के संत थे जो लम्बे समय तक माण्डू सल्तनत का अंग रहा।[1] चूँकि राज्य और राजधानी में हज़रत को विशेष सम्मान था, इसलिए उनके परिचय को माण्डू के सूफियों के साथ जोड़कर देखना इतिहास की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। हज़रत को 'मक़तूल उल इश्क़' के खिताब से जाना जाता है। संयोगवश समय चक्र ने हज़रत के पूर्वजों को ख़्वारिज़्म से लाकर भारत के एरिच कस्बे का जो चन्देरी के समीप है निवासी बनाया। वह कस्बा लम्बे समय तक कालपी सल्तनत का अंग रहा। जौनपुर के शर्की सुलतान भी उसे अपने अधीन करने के लिए प्रयत्नशील रहे, किन्तु अधिक समय तक वह माण्डू सल्तनत का अंग बना रहा।

हज़रत यूसुफ़ बदहा (या बूधा) जब बड़े हुए तब ख़्वाजा इख़्तियारुद्दीन उमर की सेवा में रहकर किताबी ज्ञान प्राप्त किया और रहस्यवाद के तत्त्वों को समझकर ख़िलाफ़त हासिल की। वहाँ से ख़रक़ा ख़िलाफ़त प्राप्त कर हज़रत ने आगे भी प्रस्थान किया और सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी तथा हज़रत शेख़ राजू क़त्ताल की सेवा में रहे। उन महान संतों के सान्निध्य में रहकर भी हज़रत ने बहुत कुछ सीखा। हज़रत यूसुफ़ बदहा स्वयं फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने ही हज़रत इमाम मोहम्मद ग़ज़ाली के 'मिनहाज़-उल-आबदीन' का अनुवाद किया था। सम्भवत: हज़रत फारसी भाषा के अच्छे शायर भी थे। इतिहास ग्रंथ 'तारीख़े मोहम्मदी' का लेखक मोहम्मद बिहमद खानी भी हज़रत का ही मुरीद रहा है।[2] इसमें 1438-39 तक का इतिहास है। मोहम्मद बिहमद खानी मोहम्मद बिहमद खान का पुत्र था जिसे एरज़ के इक्ता का पदभार जुनैद खाँ बिन फ़िरोज़ खाँ बिन ताजुद्दीन तुर्क ने सौंपा था। स्पष्ट है कि यह परिवार दिल्ली सुलतानों के महलों की राजनीति से भलीभाँति परिचित था।

मुहम्मद बिहमद खानी ने लिखा है कि हिजरी सन् 834 (1430 ईस्वी) जो गुरुवार 19 सितम्बर से प्रारम्भ हुआ था, में एक दिन हज़रत की ख़ानक़ाह में क़व्वाली का आयोजन था। अनेक सूफी संत उसका रसास्वादन कर रहे थे। हज़रत भी शोरिश कर रहे थे तभी उनकी आत्मा स्वर्ग के लिए प्रयाण कर गई।[3] हज़रत की क़ब्र उनकी ख़ानक़ाह में ही बनाई गई। बाद

में माण्डू सुलतान महमूद ख़िलजी प्रथम ने कब्र पर एक आलीशान गुम्बद–तामीर करवाया था। हज़रत एक महान सूफी साधक, शरियत के ज्ञाता और अनेक विद्याओं के पारंगत विद्वान थे। यद्यपि वे अपने निवास स्थान एरच को छोड़कर माण्डू नहीं आए, किन्तु मालवा की राजनीति, धर्म और मुस्लिम समाज पर उनका बहुत प्रभाव रहा।

संदर्भ :-

1. माण्डू सुलतानों के समय के एरच (एरज़) के लिए देखिए– उपेन्द्र नाथ डे कृत– 'मेडिवल मालवा' पृ.– 52–53, 141–45.
2. ग़ौसी शत्तारी– गुलज़ारे अबरार का अनुवाद पृ.–236, 'तारीख़े मोहम्मदी' के सम्बन्ध में देखिए– डे– मालवा–पृ.–406.
3. हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी का विसाल भी शेख़ अली संजरी की ख़ानक़ाह में क़व्वाली के समय हुआ था। वह घटना 27 नवम्बर 1235 की थी।

हज़रत अजीजुल्लाह मुतवक्कल रह.

हज़रत अज़ीज़ुल्लाह मुतवक्कल रह. माण्डू के उन महान सूफी साधकों में से एक हैं जिनके कारण नगर को महान ख्याति और प्रतिष्ठा मिली। वंश परम्परा में वे हज़रत शेख़ याह्या इब्न शेख़ लतीफ़ रह. के पुत्र हैं जो फ़ारुकी नस्ल के महान साधक रहे हैं। वंश परम्परा फ़ारुख शाह काबुली तक जाती है। हज़रत अज़ीज़ुल्ला और उनके भाई हज़रत शेख़ अहमद कच्ची उम्र के थे तभी उनके पिता हज़रत शेख़ याह्या फ़ारुकी का स्वर्गवास हो गया। माँ ने निशानी के बतौर अपने सिर की चादर देकर दोनों पुत्रों को दिल्ली से ख़्वाजा रुक्नुद्दीन चिश्ती के पास बहरवाला पाटन (गुजरात) भेजा। जब दोनों भाई हज़रत ख़्वाजा की ख़ानक़ाह के दरवाज़े पर आए तो हज़रत ख़्वाजा को मन में आभास हुआ कि शेख़ याह्या देहलवी रह. के दो पुत्र दरवाज़े पर खड़े हैं। हज़रत ख़्वाजा ने ख़ादिम को फरमाया कि उन्हें सम्मानपूर्वक भीतर लाया जाय। इसके बाद दोनों भाई हाथ में माँ की निशानी चादर लिए हुए शेख़ के समक्ष सम्मान पूर्वक उपस्थित हुए।

हज़रत ख़्वाजा रुक्नुद्दीन चिश्ती रह. के पास दोनों भाई कुछ दिनों तक रहे। कुछ दिनों बाद शेख़ ख़्वाजा रह. ने हज़रत शेख़ अहमद को माँ की सेवा और बिरादरी काम के लिए मार्ग व्यय देकर दिल्ली वापस भिजवा दिया और शेख़ अज़ीज़ुल्ला रह. को अपनी सेवा में रखकर पान की व्यवस्था करने का काम सौंप दिया। पान की ख़िदमत हज़रत ने बख़ूबी निभाया। एक दिन पान नहीं थे और रात ज़्यादा गुज़र चुकी थी, किले के दरवाज़े भी बंद थे। हज़रत अज़ीज़ुल्ला ने सोचा यदि शेख़ ने पान मांग लिया तो क्या होगा, यानी बदख़िदमती होगी। इसके बाद हज़रत किले की मोरी से निकल कर बाहर आए, तमोली से पान लिए। हज़रत ख़्वाजा को यह बात मालूम हुई कि पान नहीं थे और किस प्रकार व्यवस्था की गई थी। ख़्वाजा ने कहा आज रात की साधना का सारा फल हज़रत अज़ीज़ुल्ला के नाम रहेगा। उस रात सचमुच में हज़रत को ईश्वरीय शक्ति का आभास हुआ।

कुछ दिनों बाद हज़रत अज़ीज़ुल्ला अपने पीर बुज़ुर्गवार हज़रत रुक्नुद्दीन चिश्ती रह. की आज्ञा से अहमदाबाद आ गए और वहाँ युग विभूति सूफी साधक हज़रत अहमद खट्ट रह. से भेंट की। एक दिन हज़रत अज़ीज़ुल्ला ने शेख़ अहमद से पूछा कि उस सूबे का पीर कौन है ? शेख़ अहमद ने कहा जो व्यक्ति शारीरिक बातों से जल्दी मुक्त हो जाय। इसी बीच हज़रत शेख़ अहमद

का विसाल हो गया और शेख़ अज़ीज़ुल्ला मुतवक्कल रह. अहमदाबाद से दौलताबाद चले गए। किन्तु वहाँ का वातावरण हज़रत को पसंद नहीं आया और माण्डू के लिए रवाना हो गए। जब हज़रत नर्मदा तट पर आए तब माण्डू सुलतान महमूद ख़िलजी प्रथम के पास संदेशा भिजवाया कि यदि सुलतान मेरे स्वागत सत्कार की कोई व्यवस्था न करें, न ही मुझसे मिले या भेंट भेंजे, तो ही मैं माण्डू आ सकता हूँ अन्यथा नहीं। सुलतान ने आदेश मान लिया और हज़रत एक सामान्य व्यक्ति के रूप में माण्डू आ गए।

समय व्यतीत होने पर सुलतान का आग्रह बढ़ा और हज़रत से भेंट की इच्छा बलवती हुई। हज़रत ने भी कहा कि यदि सुलतान एक बार मिलना चाहे तो कोई हर्ज़ नहीं है। इसके बाद हज़रत ने अपने पुत्रों और परिवार को तो गुजरात भेज दिया लेकिन स्वयं माण्डू में गौशानशीन हो गए। हज़रत ग़ौसी शत्तारी ने शेख़ सालेह इब्न रफीउलमुल्क के हवाले से एक घटना का उल्लेख किया है कि एक रात हज़रत शेख़ अज़ीज़ उल्ला के मन में अचानक कोई विचार आया और अपने हुजरे से रात को उठकर घर आ गए। घरवालों से पूछा कि क्या दुनियाँ की वस्तुओं में से तुम्हारे पास कुछ है ? दाया ने उत्तर दिया कि आजकल बीबी ने पुत्री दुरमल का दूध छुड़ाया हुआ है इस वास्ते उसके लिए रोटी का एक टुकड़ा बारीक करके एक प्याले दूध में गला रखा है। शेख ने कहा उसे घर से बाहर ले जाओ और यदि कोई दरवेश मिले तो दे दो। नहीं मिले तो किसी जानवर को खिला दो। वैसा ही किया गया और हज़रत उठकर अपने हुजरे में चले गए। जब बच्ची दुरमल भूखी हुई तो रोने लगी। दाया ने ले जाकर हज़रत के हुजरे में मुसल्ले के पाए के पास लिटा दिया। हज़रत ने अपने पाँव का अगूँठा बच्ची के मुँह में दे दिया और वह चूसती हुई चुप हो गई। उसी रात को हज़रत के हुजरे में सत्रह बार एक गैवी आवाज़ हुई- 'अज़ीज़ुल्लाह अलमुतवक्कल अलल्लाह'-मुतवक्कल वह होता है जो रंज व राहत हर हाल में प्रसन्न रहे और किसी से कुछ न कहे। यानी अल्लाह ताला ज़ाहिर और बातिन को जानने वाला है इस बात पर विश्वास रखे। उस दिन से हज़रत को 'अल मुतवक्कल' कहा जाने लगा। हज़रत माण्डू के उन महान साधकों में से एक हैं जिन्होंने अपरिग्रह की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर ली थी। [1]

माण्डू के उस महान संत साधक हज़रत अज़ीज़ुल्ला अलमुतवक्कल के परिवार में पाँच पुत्र और एक पुत्री थे। उनके नाम क्रमश: हज़रत शेख़ सादुल्ला, शेख़ रहमतुल्ला, शेख़ हसन सरमस्त, शेख़ नसरुल्ला तथा शेख़ शहर उल्लाह और बीबी दुरमल थे। माण्डू में रहते हुए हिजरी 912 (1506-07) में हज़रत का विसाल हुआ था। उस वर्ष हिजरी सन् की शुरूआत शनिवार 24 मई से हुई थी। उनका मज़ार सागर तालाब के समीप है, जिसपर कभी मकबरा बनवा दिया गया था।[2]

संदर्भ :-

1. हज़रत जुनीद बुगदादी ने तसव्वुफ के आठ प्रकार बतलाए हैं उनमें तस्लीम, रज़ा और सब्र पहली साधना है। इसका साधक ही 'अल मुतवक्कल' कहलाने का अधिकारी होता है।
2. मुख़्तार अहमद- 'बुज़ुर्गानदीन-ए-मालवा'-पृ.-69-71.

हज़रत शेख़ सादुल्ला रह.

हज़रत ग़ौसी शत्तारी ने गुलज़ारे अबरार में हज़रत शेख़ अजीजुल्ला मुतवक्कल रह. की संतानों का परिचय माण्डू के संतों के रूप में नहीं दिया। वस्तुत: ये वह विभूतियाँ हैं जिनकी शिक्षा–दीक्षा और प्रारम्भिक साधना माण्डू में हुई थी। हज़रत मुतवक्कल रह. को प्रथम चार लड़के, पाँचवी लड़की और छठी संतति पुत्र रत्न की थी। जब पुत्री दुरमल का जन्म हुआ तब या उसके कुछ पहले हज़रत की अनुमति से गुजरात चले गए थे। केवल पाँचवा पुत्र हज़रत की ख़िदमत में माण्डू में रहा।

हज़रत का सबसे बड़ा पुत्र हज़रत शेख़ सादुल्ला साधना और कार्य तथा व्यवहार में बिल्कुल औलिया था। अहमदाबाद में रहते हुए हज़रत का स्वर्गवास हुआ और शेख़वाड़ा में उन्हें दफन किया गया। उनके बेटे शेख़ नेमतुल्ला हज़रत के सज्जादानशीन बने। नेमतुल्ला के बाद उनके पुत्र बदीउल्लाह को ख़रक़ा प्राप्त हुआ और जब बदी उल्लाह की जीवन ज्योति विलुप्त हुई तो हज़रत शेख़ फरीद को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। हज़रत शेख़ फरीद रह. निहायत भाग्यशाली विद्वान व्यक्ति रहे। भौतिक दृष्टि से उन्हें रफी उल मुल्क का ख़िताब था, लेकिन ईश्वरीय ज्ञान में उनका मर्तबा इससे भी कहीं ज्यादा ऊँचा था। हज़रत की मृत्यु के बाद उनके पुत्रों में से कोई ऐसा नहीं था जो सूफी साधना की पारिवारिक विरासत को सम्हाल पाता। सभी पुत्र लौकिक सुखों की तलाश में लगे रहे। यानी ख़ानदान से सूफी साधना पद्धति विदा हो गई।

हज़रत शेख़ रहमतुल्ला रह.

हज़रत शेख़ रहमतुल्लाह हज़रत शेख़ अज़ीज़ुल्लाह मुतवक्कल रह. के द्वितीय पुत्र है। इन्हें भी माण्डू से गुजरात जाने की अनुमति उनके पिता से प्राप्त हुई थी। ये हज़रत अपने पिता के ख़लीफ़ा होकर अहमदाबाद आए और पहले पुत्र यानी बड़े भाई शेख़ सादुल्ला से अलग नगर के किनारे पर रुके। पिता की प्रतिष्ठा एवं स्वयं हज़रत साधना ने अनेक सूफी साधकों को उनके सान्निध्य के लिए उत्साहित किया। देश के कोने-कोने से लोग उनके समीप आ गए और अपने-अपने हुजरे बनाकर रहने तथा साधना करने लगे। धीरे-धीरे हज़रत की ख़ानक़ाह आबाद होती गई और नवागतों से सूफियों का एक मोहल्ला ही बस गया जो कूचा शेख़पुर कहलाया। हज़रत शेख़ रहमतुल्लाह गुजरात के एक ख्याति प्राप्त साधक बने। माण्डू में जन्मे इस संत की अनेक विशेषताएँ थीं। वे बातिन के ज्ञान भण्डार थे और साधना उनका जमीर बन चुकी थी।

हज़रत कब तक जीवित रहे और परिवार में आगे कौन-कौन से लोग हुए आदि बातें ज्ञात नहीं होती।

हज़रत शेख़ हसन सरमस्त रह.

हज़रत शेख़ हसन सरमस्त रह. हज़रत शेख़ अज़ीज़ुल्लाह मुतवक्कल रह. के तीसरे पुत्र थे। उनका बाल्यकाल माण्डू में व्यतीत हुआ था। माण्डू में जन्मे उस महान साधक की शिक्षा–दीक्षा पिता के संरक्षण में यहीं मालवा में हुई थी। हज़रत साधक के रूप में एक मज्ज़ूब और हसूर थे। वे अन्य भाइयों से अलग रहे और भड़ौच को अपनी इबादतगाह बनाया। वे केवल नमाज़ के समय होश में आते थे। बाकी समय विदेह की स्थिति में रहकर ईश्वर से लौ लगाए रहते थे। हज़रत का मज़ार नर्मदा तट पर भड़ौच में है। इसके अलावा हज़रत का और कोई विशेष परिचय नहीं मिलता।

हज़रत शेख़ नसरुल्ला रह.

हज़रत शेख़ अज़ीज़ुल्ला मुतवक्कल रह. के चौथे पुत्र हज़रत शेख़ नसरुल्ला रह. माण्डू से गुजरात गए थे, किन्तु बाद में वे गुजरात छोड़कर ख़ानदेश चले आए। जब हज़रत का स्वर्गवास हुआ तो उन्हें असीरगढ़ दुर्ग के समीप सुपुर्द ख़ाक किया गया। असीरगढ़ दुर्ग पहले फारुक़ी सुलतानों और बाद में मुगल सम्राटों के अधीन रहा। हज़रत नसरुल्ला रह. की वफात के बाद उनके पुत्र हज़रत शेख़ अज़ीज़ुल्ला सानी रह. को उनका ख़रका प्राप्त हुआ। कुछ दिनों बाद हज़रत भी स्वर्गवासी हो गए। उनके बाद पुत्र हज़रत शेख़ बदीउल्ला सानी उत्तराधिकारी बने। इन्हें दुनियवी ऐश्वर्य मिला और खानदेश के अमीर आज़म रहे। इनके पुत्र हज़रत शेख़ करीमुल्ला ने वंशानुगत दुनियवी दौलत और ईश्वरीय साधना को कायम बनाए रखा। शेख़ करीमुल्ला को दो पुत्र थे- हज़रत शेख़ रफी और हज़रत शेख़ ख्वाजा। दोनों के दोनों पिता के जीवनकाल में ही स्वर्गवासी हो गए थे। इसके बाद 997 हिजरी (1588 ईस्वी) को हज़रत करीमुल्ला का भी विसाल हो गया। हिजरी सन् 997 की शुरुआत शनिवार 10 नवम्बर से हुई थी।

माण्डू के मुतवक्कल परिवार की ख्याति गुजरात और ख़ानदेश तक फैलकर युग की प्रतिष्ठा का कारण बनी।

हज़रत शेख़ शहरउल्लाह रह.

हज़रत शेख़ शहरउल्लाह रह. इब्न अज़ीज़ुल्लाह मुतवक्कल रह. अपने पिता के पाँचवें पुत्र और छठी सन्तान थे। यानी वे अपनी इकलौती बहन बीवी दुरमल से छोटे थे। हज़रत मुतवक्कल रह. के जीवनकाल में ही शेष चारों पुत्र माण्डू (मालवा) छोड़कर गुजरात चले गए थे। ये हज़रत ही माण्डू में अपने पिता के उत्तराधिकारी और सज्जादानशीन हुए। ग़ौसी शत्तारी रह. ने जब हज़रत का परिचय संकलित किया तब उनके प्रपौत्र हज़रत शेख़ नेआमत उल्लाह जीवित थे और एक घटना बतलाई थी कि सिकन्दर खाँ नामक एक जागीरदार हज़रत का मुरीद था। एक बार बड़ी प्रार्थना करके वह हज़रत शहरउल्ला रह. को अपने जागीरी गाँव ले गया। यात्रा के समय एक गाँव में रुकना हुआ। उस गाँव के लोग किसी दूसरे शहरउल्ला नाम शेख़ से दुश्मनी रखते थे। जब गाँव वालों ने शहरउल्ला नामक शेख़ के आने का समाचार सुना तो अवसर की प्रतीक्षा में अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर शेख़ पर आक्रमण की घात लगाई। जब शेख़ रह. ने एकान्त में नमाज़ अदा करना प्रारम्भ किया तो वे लोग एक साथ टूट पड़े। उस आक्रमण में हज़रत घायल हुए और मारे गए।

हज़रत शेख़ शहरउल्लाह रह. की अकाल मृत्यु के बाद उनका जनाज़ा माण्डू लाया गया और पिता हज़रत शेख़ अज़ीज़ुल्ला मुतवक्कल के मकबरे में उन्हें भी दफ़्न किया गया। कहते हैं उस ज़माने में हज़रत की कब्र से नमाज़ पढ़ने की आवाज़ बाहर खड़े लोग सुना करते थे। हज़रत शहर उल्ला के बाद उनके पुत्र शेख़ अताउल्लाह के सर पर दस्तार राहनुमाई बांधी गई। जब उनका भी स्वर्गवास हो गया तब हज़रत नेआमतुल्ला सज्जादानशीन हुए। वे एक तपस्वी साधक और दीर्घ जीवी सूफी थे। उनके पुत्र व पत्नियाँ और अन्य परिजन उनके जीवनकाल में ही स्वर्गवासी हो चुके थे। वे केवल अकेले बचे थे। उनकी मज़ार भी सागर तालाब के पूर्व में है।

हज़रत शेख़ इब्राहीम मुलतानी रह.

हज़रत शेख़ इब्राहीम मुलतानी रह. माण्डू (मालवा) के उन संतों में से हैं, जो आए, रहे, साधना की, लेकिन जब राजनीतिक परिस्थितियाँ विपरीत हो चलीं तब माण्डू छोड़कर दक्षिण की ओर चले गए। स्वभावत: हज़रत अमन चैन पसंद गम्भीर चिन्तक और कठोर साधक थे। उनका माण्डू आगमन सुलतान ग़्यासुद्दीन खिलजी के शासनकाल (22 जिल्काद 873 हिजरी यानी 3 जून 1469 से 9 रमज़ान 906 हिजरी या 29 मार्च 1501 ईस्वी तक) में हुआ था।[1] यहीं रहते हुए हज़रत के पुत्र क़ुतुब ज़माना हज़रत शेख़ मुहम्मद का जन्म हुआ था। हज़रत इब्राहीम मुलतानी का स्वयं का मर्तबा भी उच्च था। उनकी पीरी परम्परा भी अतीव प्रतिष्ठित संत हज़रत शेख़ बहाउद्दीन मुलतानी रह. से जुड़ी हुई थी जो अन्तत: हज़रत शेख़ मोहिउद्दीन जिलानी से मिलती थी। अपनी साधना-खुदापरस्ती के लिए हज़रत बड़े प्रसिद्ध रहे। खुदा तलबी, हक़ परस्ती, फ़ैज़ रसानी और रहनुमाई में सारा समय बिताने वाले शेख़ इब्राहीम बहुत ही स्वाभिमानी और अमन चैन पसंद साधक थे। जब सुलतान नासिरशाह के पुत्र शिहाबुद्दीन के कारण अशांति का वातावरण बना तो हज़रत ने माण्डू छोड़ दिया और बीदर चले गए। दौलताबाद को अपनी साधना स्थली बना ली। लेकिन हज़रत के पुत्र हज़रत शेख़ मुहम्मद माण्डू में ही रुके रहे।[2]

सुलतान नासिरशाह (अब्दुल मुज़फ़्फ़र नासिरशाह-शुक्रवार 27 रवी उल आनिवर 906 हिजरी यानी 20 नवम्बर 1500 से रमज़ान 916 या दिसम्बर 1510 तक) ने पिता से विद्रोह करके सत्ता प्राप्त की थी और अपने छोटे भाई शुजात खाँ तथा उसके परिवार को मरवा डाला था। उसे स्वयं भी अपने पुत्रों के विरोध का सामना करना पड़ा। नासिरशाह के शासनकाल में उसके बहुत से अमीर भी रुष्ट थे। उसके पुत्र शहाबुद्दीन ने (1510 ईस्वी) में उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इतिहासकार फरिश्ता का मत है कि वह विद्रोह अमीरों के बहकावे का प्रतिफल था।[4] वैसे तो नासिरशाह ने शहाबुद्दीन को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर रखा था, फिर भी जल्दी सुलतान बनने के लिए उसने विद्रोह कर दिया। एक दिन वह माण्डू से नालछा आया जहाँ सीमान्त भूभाग के अनेक अमीर आकर उससे मिल गए। तत्पश्चात् वह धार आया और यहीं रुका रहा। नासिरशाह ने स्थिति की गम्भीरता को भांप लिया और माण्डू में रुके हुए लोकप्रिय सूफी संत हज़रत शेख़ हुसेन अजमेरी से विजय हेतु आशिर्वाद प्राप्त किया।[5] उस आशिर्वाद का तात्पर्य

जनता की सहानुभूति प्राप्त करना था। इसके बाद भी शहाबुद्दीन को सुलतान नियंत्रित नहीं कर पाया और फलस्वरूप अपने तीसरे पुत्र आज़म हुमायूँ महमूद द्वितीय को उत्तराधिकारी बना दिया। इसी बीच सुलतान मर गया। उस उत्तराधिकार संघर्ष में मालवा काफी कुछ तबाह हो गया। सम्भवत: इसी संघर्ष के दौरान हज़रत शेख़ इब्राहीम ने माण्डू छोड़ दिया। सम्भवत: सूफी संतों का राजनीतिक मामलों में दख़ल देना उन्हे पसंद नहीं था।

सुलतान नासिरशाह भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जो शेख़ों, संतों और दरवेशों की साधना को समझ सकता। वह स्वयं कहा करता था कि- 'गुजिश्ता ज़माने में दिल की छुपी हुई बात पहचानने वाले दुरवेश बहुत थे। जब आसमान किसी के साथ कर्ज अदायी करता था वह बेचारे दरवेशों से इस्तमदाद करके अपने नेक व बद के अंजाम पर खबर पा लेता था, लेकिन आजकल ऐसे रोशन जमीर लोग निहायत ही नायाब हैं।' यह कथन तत्कालीन सामाजिक सोच की अभिव्यक्ति है।[6] हज़रत के स्वर्गवास के बाद दौलताबाद के लोगों के लिए उनकी मज़ार ज़ियारतगाह बन गई। दूर-दूर से लोग वहाँ आने लगे।

संदर्भ :-

1. ग़ौसी शत्तारी- 'गुलज़ारे अबरार' तथा उसका उर्दू तर्जुमा 'अज़कारे अबरार'- पृ.-112.
2. वही, पृ.-112.
3. उपेन्द्र नाथ डे- मेडिवल मालवा, पृ.-259-65.
4. फरिश्ता-दो, पृ.-517 तथा तबकाते अकबरी-तीन-पृ.-372 इत्यादि.
5. अमीर अहमद अलवी- शाहाने मालवा, पृ.-110, ग़ौसी शत्तारी- गुलज़ारे अबरार, पृ.-406 इत्यादि.
6. ग़ौसी शत्तारी, वही-पृ.-406 इत्यादि.